चन्दामामा

फरवरी / मार्च १९९८

सौ वर्षों के मताधिकार के बाद महिला प्रधान मंत्री

दिसंबर ८ को श्रीमती जेन्नी षिप्ले न्यूजलांड की प्रथम महिला प्रधानमंत्री बनीं। यहाँ यह उल्लेखनीय विषय है कि संसार में सबसे पहले याने १८९३ में ही स्त्रीयों को मत देने का हक न्यूज़लैण्ड में उपलब्ध हुआ।

श्रीमती जेन्नी षिप्ले का जन्म १९५२ में हुआ। अध्यपिका की इन्होंने डिग्री पायी और १९७२ से १९७६ तक पाठशाला में पढ़ाती रहीं। इन्होंने एक किसान से शादी की और खेती-बाड़ी के कामों में अपने पति का साथ दिया। परंतु उनकी दृष्टि सदा राजनीति पर ही केंद्रित थी। मित्रों के प्रोत्साहन के बल पर ये १९७५ में नेशनल पार्टी की सदस्या बनीं। पार्टी के कार्यक्रमों में ये विशेष अभिरुचि दिखाती रहीं, व्यस्त रहीं, जिसके कारण इन्होंने पार्टी के अध्यक्ष जिम बोग्लेर का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। नेतृत्व संभालने की इनकी शक्ति, उत्साह व गुणों को देखते हुए, बोल्गेर ने तभी भांपा कि भविष्य में ये प्रधान मंत्री बनने की योग्यता रखती हैं।



१९८७ में ये संसद के लिए चुनी गयीं। १९९० में न्यूजलांड के 'फस्टपार्टी' से समझौता करके नेशनल पार्टी के नेता बोल्गेर प्रधानमंत्री बने। 'फस्टपार्टी' के नेता विनस्टेन पीटर्स उपप्रधानमंत्री बने। बोल्गेर ने श्रीमती षिप्ले को संघ संक्षेम मंत्री बनाया। यद्यपि श्रीमती षिप्ले के लाये गये सुधारों को लेकर कड़ी नुकताचीनी हुई, पर निडर होकर उन्होंने उन्हें कार्यान्वित किया। १९९३ में ये स्वास्थ्य मंत्री बनीं। १९९६ में इन्होंने यातायात शाखा को अपने हाथ में लिया और उन-उन शाखाओं में आवश्यक सुधार ले आयीं। हां, यद्यपि उनकी प्रसिद्धि कम होती गयी, पर उनकी दृष्टि सदा उच्च पद पर ही केंद्रित रही।

बोग्लेर जब विदेशों में पर्यटन कर रहे थे, तब इन्होंने नेशनल पार्टी के अधिकाधिक सांसदों को अपनी ओर कर लिया। बोग्लेर के वापस आने के बाद प्रधान मंत्री पद से इस्तीफा देने के लिए उनपर जोर डाला गया।

जेन्नी षिप्ले ने न्यूजलांड के 'फस्टपार्टी' से समझौता कर लिया और स्वयं प्रधान-मंत्री बनीं। उस पार्टी का उम्मीदवार ही यथावत् उप प्रधान मंत्री बना रहा। पूर्व प्रधानमंत्री बोग्लेर विदेशी व व्यापार शाखाओं के मंत्री नियुक्त हुए।

नूतन प्रधान मंत्री जेन्नी षिप्ले ने पाँच अंशों के एक वृहत कार्यक्रम की घोषणा की। पारिवारिक, सामाजिक मूल्यों को बढ़ावा देना, वर्तमान १२० सांसदों की संख्या को घटाकर अनावश्यक व्यय को रोकना, विद्या-वैद्य क्षेत्रों में अभिवृद्धि लाना, करों में कटती आदि उनसे घोषित कार्यक्रमों के मुख्य अंश हैं।

१९९९ में न्यूजलांड में चुनाव होंगे। परिशीलकों का मानना है कि देश की वर्तमान परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए अगले चुनाव में लेबर पार्टी के ही जीतने की संभावना है। श्रीमती हेलेन क्लार्क नामक एक महिला ही अब लेबरपार्टी का नेतृत्व संभाल रही हैं। इसलिए कोई भी पार्टी सत्ता हस्तगत क्यों न करे, प्रधानमंत्री होंगीं एक महिला ही।



मंत्र-तंत्रों की संदूक

मोती के व्यापारी मुरहरि के चार पुत्र थे। बड़े तीनों अक़लमंद थे। वे तीनों व्यापार में पिता की मदद करते थे। चौथा बेटा मनोहर मंद बुद्धि का था। इसीलिए सब लोग उसे सिर्फ़ मनोहर कहकर पुकारते नहीं थे, मूर्ख मनोहर कहकर पुकारते थे। यों पुकारकर उसका मजाक उड़ाते रहते थे। यों वही नाम उसका स्थायी हो गया। उसके बचपन में ही उसकी माँ मर गयी थी। इसलिए मुरहरि अपने चौथे पुत्र को बहुत चाहता था।

बड़े तीनों की शादी हो गयी और उनकी पत्नियाँ भी ससुराल में आकर बस गयीं। उन तीनों बहुओं ने देखा कि उनका ससुर उनके पतियों से भी अधिक मनोहर को ज़्यादा चाहता है। यह उन्हें पसंद नहीं था। इस बात पर वे अपने ससुर से नाराज थीं।

मुरहरि की आशा थी कि मनोहर का व्याह कर दूँ तो हो सकता है, उसके व्यवहार में तब्दीली आये। चूँकि मनोहर के बारे में आसपास के गाँवों में हर किसी को बख़ूबी मालूम था, इसलिए कोई भी उसे अपनी बेटी देने आगे नहीं आया। मनोहर की शादी को लेकर मुरहरि बहुत समय तक दुखी रहा और आखिर इसी दुख के बोझ को सह न पाने के कारण मर गया।

उस दिन से मनोहर के कष्टों का आरंभ हुआ। उसकी भाभियाँ उससे हर तरह का काम करवाती थीं। मनोहर को काम करना आता ही नहीं था, इसलिए वे जो भी काम उसे सौंपती थीं, वह उन्हें बिगाड़ देता था।

अपने पतियों के बाहर चले जाने के बाद मनोहर की तीनों भाभियाँ घर के बीचों बीच समाविष्ट हुईं।

''खाता खूब है, पर काम करता कुछ नहीं। क्या जब तक यह ज़िन्दा रहेगा, तब तक हमें ही इसकी देखभाल करनी होगी?'' बड़ी बहू ने हाथ घुमाते हुए और दोनों बहुओं से पूछा। ''कोई भी बाप इससे अपनी बेटी की शादी कराने तैयार नहीं होगा। लगता है, जिन्दगी भर यह कुँवारा ही रह जायेगा। किसी और गाँव में इसे घर-जँवाई बनाकर भेजने का कोई रास्ता भी दिखायी नहीं दे रहा है।'' दूसरी बहू ने कठोर स्वर में कह दिया। ''इस बूढ़े ने जाते-जाते हमें यह जिम्मेदारी संभाली और चुपचाप आखें बंद कर लीं।'' तीसरी बहू ने बड़े ही रूखे स्वर में कह दिया। तीनों बहुओं ने आपस में बहुत देर तक चर्चा की और अंत में इस निर्णय पर पहुँचीं कि इस बला को किसी तरह यहाँ से हटाना है।

उस समय पिछवाड़े में पौधों को पानी दे रहा था, मनोहर। काम पूरा हो जाने के बाद हाँफता हुआ वह वहाँ आया और कहने लगा ''बड़ी भूख लगी है भाभियों। खाने के लिए रोटियाँ, दाल और लौकी की तरकारी चाहिए।''

दूसरे ही क्षण तीनों भाभियाँ अंदर चली गयीं और चटाइयाँ बिछाकर लेट गयीं। उन्हें देखकर मनोहर डर गया और कहा ''आप तीनों को क्या हो गया ? क्या तबीयत ठीक नहीं? पिताजी की तरह आप तीनों भी मरनेवाली हैं ?''

''मुझे लगता है कि हथौड़े से कोई मेरे सिर को मार रहा है। गेहूँ के रंग के सांप के दांत उखाड़ो और उन्हें आग में डाल दो। उस धुएँ को सूँघने पर ही मेरा यह सिरदर्द दूर हो जाएगा।'' बड़ी भाभी ने कहा।

''मैं पेट के दर्द से मरी जा रही हूँ। लगता है, पेट के अंदर भारी पत्थर है।



बाघिनी के दूध में अजवाइन का चूर्ण मिलाकर पीने पर ही मेरा यह दर्द दूर हो जायेगा।'' दूसरी भाभी ने कहा।

''मेरी आँखें जली जा रही हैं। लगता है, आँखें रेत से भर गयीं। राक्षसी की सींग को खूब घिसकर उसे काजल की तरह आँखों में लगा लूँ, तभी यह जलन दूर होगी।'' तीसरी भाभी ने कहा।

मनोहर को लगा कि मानो उन सारे कष्टों को वह स्वयं झेल रहा हो। उसने बहुत ही दुख-भरे स्वर में कहा ''भाभियो, पैसे दो। अभी बाज़ार जाऊँगा और जो-जो चाहिये खरीद लाऊँगा।''

''वे बाजार में नहीं मिलतीं। जंगल में मिलेंगी। तुम तो जानते ही हो, तुम्हारे भाई सदा कामों में व्यस्त रहते हैं। उन्हें क्षण भर

रम्या भूषण



की भी फुरसत नहीं।" कहती हुई तीनों जोर-जोर से कराहने लगीं।

मनोहर बड़े ही कोमल हृदय का था। उनकी कराहें उससे सुनी नहीं गयीं। उसने कहा, "अभी जंगल चला जाऊँगा। जो-जो चाहिये, ले आऊँगा।" कहता हुआ वह निकल गया। जैसे ही वह वहाँ से गया तीनों उठ बैठीं और बड़ी भाभी खुशी-खुशी कहने लगी "आज रात को अवश्य ही सांप उसे डसेगा।"

"अगर उससे वह बच गया तो बांघ अवश्य ही उसका पेट चीर डालेगा।" दूसरी भाभी आनंद-विभोर हो कहने लगी।

"अगर दोनों विपत्तियों से बच भी जाए तो कोई राक्षसी उसे निगल लेगी" तीसरी भाभी कहती रही और ठठाकर हँसती रहीं।

मनोहर सर्पराज, बाघ व राक्षसी को ढूँढ़ता हुआ जंगल में थोड़ी दूर गया कि नहीं, चारों ओर अंधेरा छा गया। जंगल में वह बहुत दूर तक गया, मगर वहाँ उसे सियार, खरगोश ही दिखायी पड़े, सर्प या बाघ दिखायी नहीं पड़े।

वह भूख से तड़प रहा था। उसने जोश में आकर चिल्लाया "ऐ राक्षसी, इधर मेरे सामने आ जा।" उस प्रांत में एक चट्टान पर झोंपड़ी बनाकर अपनी बेटी के साथ रह रही थी मंत्र-तंत्रों की भानुमती। उसे ये चिल्लाहटें सुनायी पड़ीं। वह बाहर आयीं और कहने लगी "यह कौन चिल्ला रहा है। इतना साहस? एक तो भानुमती के घर के पास आये, फिर उसपर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाये?"

मनोहर ने मद्दिम रोशनी में भानुमती को देखा और चट्टान पर आकर कहने लगा "सासू, क्या आसपास गेहूँ के रंग के सर्प, बाघ या राक्षसी नहीं हैं?"

"मैं उन तीनों से तीन गुना बड़ी हूँ। मेरा नाम भानुमती है। अरे छोकरे, इतनी रात को यहां क्यों आये? क्यों ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहे हो?" आश्चर्य-भरे स्वर में उसने पूछा।

मनोहर ने अपनी तीनों भाभियों पर जो गुज़रा, साफ़-साफ़ बताया और साथ ही पूछा कि क्या करने पर वे उन-उन विपत्तियों से बच सकती हैं।

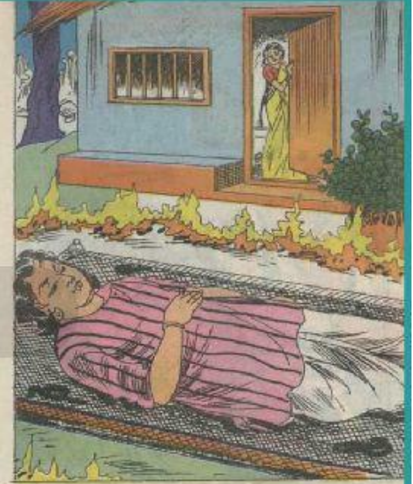
भानुमती उसकी बातों से जान गयी कि वह बेचारा है, नासमझ है, नादान है और उसकी भाभियाँ उसे मार डालने का चक्कर चला रही हैं।

"तुम बड़े ही साहसी हो दामाद। लगता है, बहुत भूखे हो। तुरंत भूख नहीं मिटायी तो साहस भी ठंडा पड़ जायेगा। चार-पाँच रोटियाँ खा लो" कहती हुई वह सन की खाट झोंपड़ी से बाहर ले आयी।

फिर वह एक थाली में ज्वार की चार रोटियाँ ले आयी। थाली में कुकुरमुत्तों की तरकारी भी थी। मनोहर ने जल्दी-जल्दी खा लिया और भानुमती का दिया पानी पी लिया। फिर कहा "सासू, तुम्हारे खिलाये इस खाने के सामने गाँव की मुर्गी का मांस भी कुछ नहीं।" चुटकी बजाते हुए उसने कहा।

उसकी बातों पर भानुमती ज़ोर से हँस पड़ी और कहा, "दामाद, यह तो मुर्गी का गोश्त नहीं। कुकुरमुत्तों की तरकारी है यह। सौंदर्य में राजकन्याएं भी मेरी बेटी स्वर्णमंजरी के सामने टिक नहीं सकतीं। उसी की बनायी रसोई है यह।"

झोंपड़ी के बाहर हो रही इस बातचीत के कारण स्वर्णमंजरी का निद्रा-भंग हुआ। वहीं से वह बोली "अम्मा, क्या नेपाल से फिर तुम्हारा जादूगर गुरु आ टपका? जो मंत्र तुमने सीखे, वे क्या काफी नहीं हैं? जादूटोनेवाली की बेटी कहकर मुझसे कोई शादी करने भी तैयार नहीं है। तुम्हारी बेटी होने के नाते लगता है, जन्म भर इसी जंगल में पड़ी रहूँगी और इसी झोंपड़ी में घुट-घुटकर मर जाऊँगी।" उसकी बातों में उसका क्रोध स्पष्ट झलक रहा था। भानुमती अपनी बेटी से कुछ न बोली। उसने मनोहर से कहा, "दामाद, सुबह तक इसी खाट पर सो जा। तुम्हें जो चीजें चाहिये, उनके बारे



में कल सुबह सोचेंगे।" कहकर हाथ में रखे हुए मंत्रदंड से एक रेखा खींची। तुरंत भड़कती हुई अग्नि एक फुट की उंचाई तक उठी और फैली। "डरो मत दामाद। आग देखेगा तो कोई भी जंतु इस तरफ़ आने का साहस नहीं करेगा।" कहती हुई भानुमती झोंपड़ी के अंदर चल पड़ी।

भानुमती जैसे ही अंदर गयी, मनोहर सो गया। फिर से सोने के प्रयत्न में लगी स्वर्ण मंजरी से उसकी माँ भानुमती ने कहा "बाद सो जाना। पहले देखना कि बाहर सोया हुआ वह जवान तुम्हें पसंद आया या नहीं?"

स्वर्णमंजरी ने झोंपड़ी का दरवाज़ा खोला और बाहर देखा। उस मद्दिम रोशनी में उसने देखा कि युवक गाढ़ी निद्रा में है। देखने में बहुत ही सुंदर है और साथ ही हृष्ट-पुष्ट



भी । वह उसे बेहद पसंद आया । शरमाती हुई दरवाज़ा बंद करके जब वह अंदर आयी तब उसकी माँ ने कहा "मैं तुम्हारा मनोभाव जान गयी । सबेरे ही उस जवान से तुम्हारी शादी हो जायेगी । वह भले ही नादान हो, परंतु है, बहुत ही अच्छे स्वभाव का । नेपाल के मेरे गुरु कहा करते हैं कि एक सुंदर लड़की का विवाह किसी नादान युवक से हो जाए तो इसे उसे पूर्वजन्म का पुण्य ही कहा जाना चाहिये ।" कहकर वह ज़ोर से हँस पड़ी ।

दूसरे दिन सोये हुए मनोहर को उसने छूकर जगाया और कहा "दामाद, तुमने मेरी बेटी स्वर्णमंजरी से शादी की तो तुमने जो-जो माँगे, वे सब के सब तुम्हें दूँगी ।"

भाभियों की तबीयत ठीक हो जाये, यही मनोहर को चाहिये था, इसलिए उसने कहा "इतना गिड़गिड़ाने की क्या जरूरत है सासू । आख़िर शादी ही तो करनी है । कर लूँगा ।"

भानुमती ने तुरंत पहाड़ी मंदिर में उनकी शादी करायी । फिर उसने पास के एक गाँव से बैल-गाड़ी मंगायी । जब दामाद और बेटी गाड़ी में बैठ गये तब अंदर से वह काठ की बनी पुरानी एक बड़ी संदूक ले आयी और गाड़ी में रखी । उसने मनोहर से कहा "दामाद, अपनी भाभियों से कहना कि दहेज के साथ-साथ, उन्हें जो-जो चाहिये, वे सबके सब इस संदूक में भरे पड़े हैं ।" यों कहकर उसने उन्हें बिदा किया ।

शाम तक मनोहर अपनी पत्नी समेत अपने घर के सामने आया । भाभियों ने तो तय कर लिया था कि वह कभी का मर चुका होगा और अपने पिता के पास मृत्युलोक में पहुँच चुका होगा । परंतु उसे दुल्हे के वेष में देखकर सन्न रह गयीं । उसके साथ वधु के वेष में एक अति सुंदर कन्या को भी देखकर उनके मुँह से बात ही नहीं निकली ।

गाड़ीवाले ने संदूक अंदर रख दी और चला गया । मनोहर के साथ-साथ घर में प्रवेश करती हुई स्वर्णमंजरी को उन्होंने चौखट पर ही रोक दिया और कहा "अंदर पाँव रखा तो पाँव तोड़ दूँगी । कौन है री तू ? हमारा देवर सुंदर और हट्टा-कट्टा लगा तो बस, उसे अपने वश में कर लिया और उससे शादी कर ली ? बिना दहेज दिये कैसे शादी कर सकती है ? यह शादी, शादी ही नहीं, मेरे देवर की बरबादी है ।"

"मेरी सास ने कहला भेजा है कि आपको जो भी चाहिये, वे सबके सब उस संदूक में हैं ।" मनोहर ने कहा । यह सुनते ही भाभियाँ सोच में पड़ गयीं कि मौत से बचकर देवर वे सारी चीजें कैसे ले आ पाया ।

पहले बड़ी भाभी ने बड़ी ही आतुरता से संदूक का ढक्कन खोला । बस, गेहुँवे रंग के सर्पराज ने फुफकारता हुआ अपना फन फैलाया । वह चिल्लाने ही वाली थीं, किन्तु अपने को संभाला और संदूक का ढ़क्कन बंद कर दिया । फिर कमरे के बाहर आयी । कहा "अब भी यहीं क्यों खड़े हैं ? अंदर आइये ।" कहती हुई उसने मनोहर व स्वर्णमंजरी का स्वागत किया ।

इतने में दूसरी भाभी ने जल्दी-जल्दी कमरे में प्रवेश करके संदूक का ढ़क्कन खोला । उसने देखा, अंदर एक बहुत बड़ा भयंकर बाघ अपना मुँह खोले खड़ा है । इस दृश्य को देखकर दूसरी भाभी बेहोश होने ही वाली थी, पर उसने भी अपने को संभाला औड़ बाहर आकर कहा, "अरे यह क्या ? आप दोनों खड़े क्यो रह गये । बैठ जाओ ।"

तीसरी भाभी लगभग दौड़ती हुई कमरे में आयी और संदूक खोली । उसने देखा कि अंदर रोमों से भरी काली एक राक्षसी अपनी आखें मल रही हैं और जंभाई ले रही है । यह देखकर उसे लगा, मानो उसके प्राण पखेरु उड़े जा रहे हों । पगली की तरह देखने लगी और बड़ी मुश्किल से बाहर आयी । बाहर आकर उसने मनोहर और स्वर्णमंजरी से प्यार से कहा "पता नहीं, कब खाना खाया होगा । पाँव धोकर आ जाओगे तो खाना परोसूँगी ।"

मनोहर ने उनसे कहा "लगता है, आपके कष्ट दूर हो गये । यह संदूक मेरे ही कमरे में रहेगी । मेरी सास की भेजी चीज़ें जब कभी भी आपको चाहिये, मैं खुद लाकर दूँगा ।"

"तुम दोनों तो अभी छोटे हो । छोटे क्या कभी बड़ों को देते हैं? हम ही बड़ी जागरूकता और प्रेम के साथ तुम्हारी देखभाल करेंगे ।" प्यार जताते हुए नाटकीय ढंग में तीनों भाभियों ने एकसाथ कहा ।

भानुमती को मालूम था कि जब तक वह संदूक उस कमरे में होगी तब तक उसके दामाद का या उसकी बेटी का कोई भी, कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेगा । वे जो कहेंगे, वही होगा । और सचमुच हुआ भी वही ।



एक हज़ार एक सौ सोलह

हेलापुरी का राजा गौतमसेन बड़ा ही शिवभक्त था। कलापोषक भी था। किसी भी कला में जो भी कौशल रखता हो तो राजा का दर्शन कर सकता था और अपनी कला का प्रदर्शन करके उससे पुरस्कार पा सकता था।

सुगंधिपुरी का शंकर उत्तम कोटि का शिल्पी था। अपने हाथों छीली गयी देवता मूर्तियों तथा शिल्पों से भरे एक अति मनोहर देवालय का निर्माण उसका जीवन-ध्येय था। किन्तु इस निर्माण-कार्य के लिए कम से कम लाख अशर्फियाँ चाहिये।

शंकर ने खूब सोचा-विचारा। फिर अर्द्धनारीश्वर का शिल्प काले पथ्थर पर बड़े ही कलात्मक ढंग से छीला और उसे लेकर राजा गौतमसेन के पास गैया। उसके इस कलानैपुण्य से भरे अद्‌भुत शिल्प को देखकर राजा मुग्ध हुआ और मंत्री को आदेश दिया "इस शिल्पी को एक हज़ार एक सौ सोलहशर्फियाँ दीजिये।"

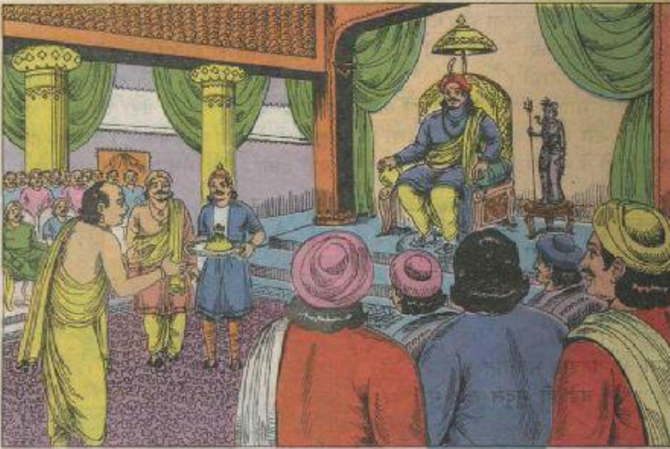
एक सौ सोलह अशर्फियाँ एक थैली में रखी गयीं और वह चाँदी के थाली में लायी गयी। यह देखकर शंकर बहुत ही निराश हुआ। बेचारे ने सोचा कि उसकी कला पर प्रसन्न होकर राजा लाख अशर्फियाँ देंगे और वह मंदिर का निर्माण-कार्य पूरा कर पायेगा।

वह सोच में पड़ गया कि इस स्थिति में क्या करूँ और क्या न करूँ, तब बिजली की तरह एक उपाय उसके मस्तिष्क में चमक उठा। उसने राजा से कहा "महाराज, यह छोटी रक़म नहीं बल्कि पहले आपने जैसे कहा, उस प्रकार एक हजार एक सौ सोलह प्रदान कीजिये।"

शिल्पी की बातें राजा की समझ में नहीं आयीं। वह थोड़ी देर तक सोचता रहा और फिर शंकर के वाक्‌चातुर्य पर मुस्कुराते हुए मंत्री से कहा "मैंने पहले जैसे कहा, उसी प्रकार इस महाशिल्पी को हजार एक सौ सोलह दीजियेगा।"

यों शंकर राजा से लाख अशर्फियों से भी अधिक धन प्राप्त कर पाया। अपने आशयों के अनुसार मंदिर का निर्माण अद्‌भुत रूप से किया।

\- रंगाचारी





सम्राट अशोक

१३

(पिता बिन्दुसार की मृत्यु का समाचार पाकर अशोक थोड़ी-सी सेना को लेकर उज्ञयिनी से निकला और पाटलीपुत्र पहुँचा। छहों राजकुमार युद्ध में मारे गये, जो उसे मारने पर तुले हुए थे। पिता की चिता में आग लगाने के बाद बड़ों की इच्छा के अनुसार उसने राज्याधिकार स्वीकार किया। तक्षशिला से क्रोध व आवेश में तूफान की तरह आया दुरहंकारी सुषेम राजधानी के नगरद्वार पर मार डाला गया। विदीशा देवी के अनुरोध तथा मंत्री व सेनाधिपति के ज़ोर देने पर अशोक ने एक राजकुमारी से विवाह किया। अशोक का राज्याभिषेक संपन्न हुआ। कुछ समय बाद मंत्री व सेनाधिपति ने अशोक से आग्रह किया कि वे कलिंग पर आक्रमण करें और उसे अपने वश कर लें। कलिंग से युद्ध करने की तैयारियाँ पाटलीपुत्र में शुरु हो गयी। - बाद)

पाटलीपुत्र से उज्ञयिनी आया हुआ दूत विदीशादेवी से मिला और सविनय उसे नमस्कार किया। उसने सविनय हाथ जोड़ते हुए कहा "महारानी को प्रणाम।"

"मुझे महारानी कहकर संबोधित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपके महाराज ने जिस आनंदि मित्रा से विवाह किया, वही इस संबोधन के योग्य हैं" विदीशा ने बड़े ही मृदुल स्वर में कहा।

"क्षमा कीजिये महारानी। महाराज ने द्वितीय विवाह किया, इसका यह मतलब नहीं कि आप महारानी नहीं हैं। राजा सदा आपके तथा अपने बच्चों के बारे में ही सोचते रहते हैं। वे इस बात को भूल नहीं पा रहे हैं कि आपने उन्हें दो बार प्राण-दान दिया। आपको व बच्चों को देखने के लिए वे तड़प रहे हैं। शीघ्र वे कलिंग पर आक्रमण करनेवाले हैं। युद्ध में



जय-पराजय के बारे में कोई क्या कह सकता है ? बड़े से बड़े वीर भी इसकी कल्पना नहीं कर सकते । वे चाहते हैं कि उनके युद्ध में जाने के पहले आप और बच्चे पाटलीपुत्र आ जाएं और वहीं बस जाएं ।'' अशोक का दिया हुआ पत्र उसे देते हुए दूत ने कहा ।

उसकी बातें सुनते ही विदीशा देवी के प्रशांत हृदय में विषाद की मेघाएँ छा गयीं । उसका वदन चिंताग्रस्त हो गया । उसने उस पत्र को धीरे-धीरे पढ़ा । बाद उसकी दृष्टि अपने बच्चे महेंद्र व संघमित्रा पर केंद्रित हुई, जो उस समय एक वृक्ष के तले शांत बैठकर तालपत्र के ग्रंथों का गंभीरता से पठन कर रहे थे ।

थोड़ी देर बाद उसने दूत से कहा ''तुम शायद जानते हो कि इस नगर में पहले अशांति थी । कोई भी सुख की नींद नहीं सो पाता था । मेरे पति ने ही यहाँ सुस्थिर रूप से शांति की स्थापना की । उन्होंने कितने ही न्याय व धर्मसम्मत निर्णय लिये । उन्हें नियमबद्ध लागू करने के लिए ईमानदार अधिकारियों की नियुक्ति की । उन समर्थ अधिकारियों की सुव्यवस्था के कारण यहाँ की प्रजा और मेरी संतान भी सुखी है, प्रशांत है । यहाँ के सहज प्रशांत वातावरण में, उत्तम गुरुओं के पर्यवेक्षण में महेंद्र व संघमित्रा विद्याभ्यास कर रहे हैं । ऐसे अबोध बच्चों को उस नगर में ले आना क्या न्यायसंगत है, जो शत्रुता, पारस्परिक विरोध आदि दुर्गुणों से भरा पड़ा है । उस राजधानी में कैसे भेजूँ, जहाँ हाल ही में



रक्त की नदियाँ प्रवाहित हुईं । ऐसी स्थिति में अपने बच्चों को वहाँ ले आना उचित होगा ? अलावा इसके, पूज्य गुरुदेव उपगुप्त अक्सर उज्जयिनी आ-जा रहे हैं । उस महात्मा का दर्शन करने और उनकी सेवाएँ करने के लिए मेरे बच्चे अत्यंत उत्साह दिखा रहे हैं । ऐसा सुअवसर उन्हें पाटलीपुत्र में थोड़े ही प्राप्त होगा । अधिकारों के पीछे पागल तथा ओहदों से प्राप्त होनेवाले सुखों के पीछे दौड़नेवाले राज्याधिकारियों के सिवा वहाँ अपने हैं ही कौन ?'' विदीशादेवी ने धीमे स्वर में दूत से पूछा ।

दूत कुछ उत्तर नहीं दे पाया । सकपकाता रहा ।

''दूत, राजा के प्रति हमारा गौरव है । उनके प्रति हममें आराधना-भाव है । किन्तु



उनकी लड़ाई के प्रयत्नों के प्रति हममें आदर-भाव नहीं हैं। पाप-पुण्य से अपरिचित मासूम जनता पर पिल पड़ने, उन्हें मार डालने तथा संपन्न नगरों को श्मशानों के रूप में बदल देने के अलावा इन युद्धों से रखा ही क्या है। और यह पूरा हत्याकांड होगा, मेरे पति अशोक के नाम पर। इससे बढ़कर विडंबना और क्या हो सकती है। युद्धों में पतियों, पुत्रों, भाइयों को खोकर विलाप करती हुई असंख्य उन अबलाओं की दुस्थिति व दुर्दशा की कल्पना मात्र से शरीर सिहर उठता है। ये कैसे आनंददायक घटनाएँ कही या मानी जा सकती हैं? घावों से पीड़ित स्त्री-पुरुष जब मृत्यु की शरण में जाने लगते हैं, तब उनके मुँह से निकलते हुए शाप वचन सह पायेंगे? युद्ध सब प्रकार से नष्टदायक है। अतः वे चढ़ाई का निर्णय वापस ले लेंगे तो अपने बच्चों सहित पाटलीपुत्र आऊँगी। अपने महाराज को मेरा भी निर्णय सुना देना।" विदीशादेवी ये बातें बड़ी ही गंभीरतापूर्वक कहती रहीं।

"महारानी, करुणापूरित आपके इस संदेश का प्रत्युत्तर देने का अवकाश महाराज को होगा या नहीं, यह मैं नहीं जानता। क्योंकि चढ़ाई के प्रयत्न शुरु हो चुके। विजययात्रा पर निकलने के पहले महाराज आपको एक बार देखने की आशा रखते होंगे।" दूत ने विनयपूर्वक कहा।

"मैं नहीं समझती कि यह संभव है। पर यहीं से मैं आपके राजा के कल्याण की कामना करूँगी। पास ही की प्रशांत गुफ़ा में ध्यान-मग्न होकर प्रार्थना करती रहूँगी। वह प्रार्थना राजा की विजय के लिए नहीं बल्कि मेरी प्रार्थना होगी - उनके हृदय में विवेक व विचक्षण-ज्ञान विकसित हों, शांत भावों का उदय हो। तुम इतनी दूर चले आये, इसके लिए तुम्हें मेरे धन्यवाद।" करुणाद्र नेत्रों से विदीशादेवी ने कहा।

दूत ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और वहाँ से चला गया। अशोक सायंकाल के समय पश्चिमी पहाड़ियों में अस्त होते हुए सूर्य को देखते हुए पाटलीपुत्र के राजभवन के ऊपर विचर रहा था। थोड़ी देर बाद यश वहाँ आया और उसे प्रणाम किया, किन्तु अशोक मौन ही रहा। यश ने उसके मौन रह जाने का कारण पूछा। अशोक ने दीर्घ श्वास लेते हुए कहा "आज एक के बाद एक दो अशुभ समाचार सुनने पड़े।"

"वे क्या हैं?" यश ने पूछा।

"कलिंग से आये हमारे गुप्तचरों से प्राप्त समाचार पहला है। यह सच है कि कलिंग के राजा बिन वारिसों के मर गये। परंतु कलिंग के इक्कीस परगणों पर वहाँ के अधिकारी मिल-जुलकर एक शासक की तरह बड़ी ही दक्षता के साथ शासन-भार संभाल रहे हैं। गुप्तचरों का कथन है कि उनकी एकता अभेद्य है। अनुशासन के लिए विख्यात उनकी सेना बड़ी ही शक्तिशाली है। अब रही व्यापार की बात। राजा की मृत्यु के बाद भी व्यापार में कोई ढ़िलाई नहीं आयी। उल्टे दिन ब दिन बढ़ता, फैलता जा रहा है" अशोक ने नाराजी से कहा।

"दूसरा वह अशुभ समाचार क्या है?" यश ने पूछा।

"तुम्हारी प्यारी बहन विदीशादेवी ने यह कहकर यहाँ आने से इनकार कर दिया कि बच्चे वहाँ सानन्द हैं। मेरी दृष्टि में यह बहाना मात्र है" अशोक ने कहा।

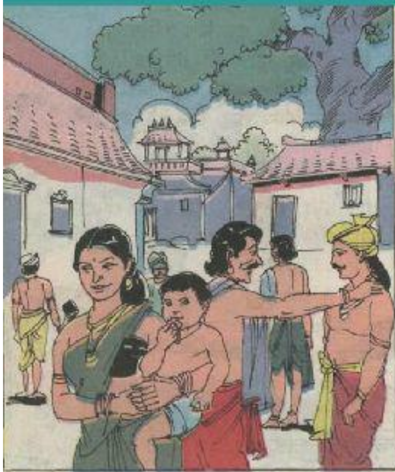
"महाराज, आप क्यों समझ रहे हैं कि वह एक बहाना है। बच्चे तो सचमुच वहाँ बहुत खुश हैं।" थोड़ी देर रुककर यश ने फिर कहा "महाराज क्षमा करें। मैं जो कहनेवाला हूँ, वह शायद आपके लिए तीसरा अशुभ समाचार होगा।"

अशोक ने क्रोध प्रकट करते हुए इस भाव से देखा, बोलो, वह समाचार क्या है?



"आप जानते ही हैं कि हमारी व्यापार-नौकाएँ तरह-तरह की वस्तुओं को लेकर सुवर्ण द्वीप समुदाय की ओर गयीं। परंतु जावा, सुमत्रा, बाली आदि द्वीपों में हमारे व्यापारी कोई वस्तु बेच नहीं सके। वहाँ की जनता कलिंग देश के व्यापारियों के अलावा किसी और देश के व्यापारियों से कोई वस्तु खरीदना नहीं चाहती। कलिंग के व्यापारी उन द्वीपों के निवासियों से इतने अच्छे संबंध रखते हैं।" यश ने तीसरा अशुभ समाज्ञार यों सुनाया।

"उन तथाकथित संबंधों को जड़ से उखाड़ देंगे। कलिंग जब हमारे वश हो जायेगा तब हमारी अनुमति पाने पर ही तो वहाँ के व्यापारी अन्य द्वीपों में व्यापार कर पायेंगे। ये सारे अशुभ समाचार चढ़ाई



के मेरे संकल्प को और बढ़ावा दे रहे हैं। इन्हें सुनकर मैं पीछे हटनेवाला नहीं हूँ। ये समाचार मुझे कमजोर और बुज़दिल नहीं कर सकते।'' अशोक ने अत्यंत आवेश में आकर कहा। यश भांप गया कि अशोक अपनी पीड़ा तथा निराशा को ढ़क लेने के लिए यों आवेश में बोल रहे हैं। परंतु वह मौन रहा गया।

दयानदी तट पर स्थित सुंदर नगर है तोशाली। नगर से सटकर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ और सुंदर उद्यानवन हैं। पुराणों में लिखा हुआ है कि दयानदी सरस्वती नदी के नाम से प्रसिद्ध है। सरस्वती नदी के तट पर दधीचि नामक एक मुनिवर रहा करते थे। उसी काल में वृत्तास नामक राक्षस विश्रृंखल होकर मानव और देवताओं को तरह-तरह से सताने लगा। इंद्र उसे मार नहीं सका। इंद्र जब ध्यान-मग्न था, तभी उसे मालूम हो पाया कि तपोसंपन्न दधीचि मुनिवर की हड्डियों से तैयार वज्रायुध से ही वृत्तासुर की मृत्यु हो सकती है। इंद्र ने दधीचि को यह विषय बताया। परोपकार को परमार्थ माननेवाले दधीचि ने, लोक-कल्याण को दृष्टि में रखते हुए, इंद्र की आकांक्षा की पूर्ति के लिए ध्यान में आसीन होकर अपना प्राण त्याग दिया। इंद्र ने दधीचि की रीढ़ को अपने वज्रायुध के रूप में मोड़ा। मुनि के तपोबल से वृत्तासुर, इंद्र के वज्रायुध से मार डाल दिया गया। मानव व देवताओं की पीड़ाएँ दूर हुई। दधीचि त्याग-धनी था। उसकी पवित्र स्मृतियों ने तोशाली की जनता को आदर्श नागरिकों के रूप में सजाया-संवारा। दूसरों की सहायता करने में वे कभी भी पीछे नहीं हटते थे। ब्राह्मणों की संख्या अधिक थी पर अल्पसंख्यक जैनों व बौद्धों का वे समान रूप से आदर करते थे। सुप्रसिद्ध जैन मुनि ऋषभनाथ तीर्थंकर इसी नगर के थे। तोशाली की जनता ने नगर के बीचों बीच एक अद्भुत शिला मूर्ति की स्थापना की। तीनों मतों के धर्मावलंबी इसकी पूजा करते थे। मौर्यवंश की स्थापना के पूर्व मगध का एक शासक उस शिलामूर्ति को ज़बरदस्ती पाटलीपुत्र ले गया। पाटलीपुत्र पर हमला करके उस शिला मूर्ति को वापस ले आने की कोशिश कलिंग के राजाओं ने दो बार की, किन्तु जैन तीर्थंकरों ने उन्हें ऐसा करने से रोका और कहा ''सहनशक्ति व क्षमा-गुणों में हमें चाहिये कि हम दूसरों का आदर्श बनें। कलिंगमुनि की मूर्ति अगर पाटलीपुत्र में रखी गयी तो इसमें कोई दोष नहीं। अच्छा यही है कि एक और मूर्ति हम अपने ही नगर में प्रतिष्ठापित करें।'' उन्होंने राजाओं को यों समझाया।

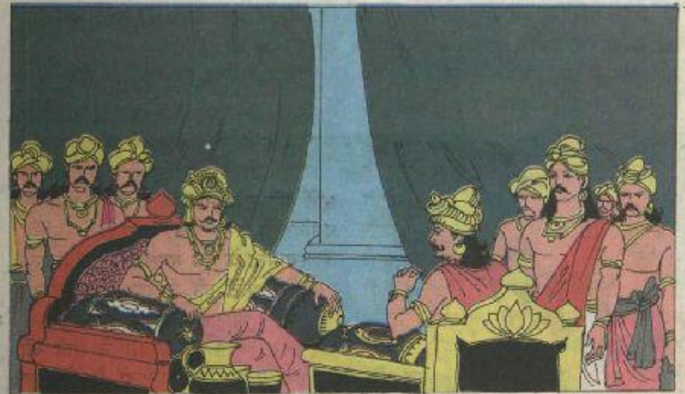
नयी मूर्ति की स्थापना के प्रयत्नों के अंतिम दिनों में आख़िरी कलिंग राजा की अकाल मृत्यु हुई।

राजा की मृत्यु के उपरांत राज्य की शांति व सुरक्षा को सुस्थिर रखने के लिए वहाँ व्यापार और विस्तृत किये गये। कलिंग राज्य की संपदाओं की अभिवृद्धि करने में जी-जान से लग गये वहाँ के अधिकारीगण।

उस समय हठात् एक दिन कलिंग राज्य की सरहदों पर मगध की सेना बड़ी ही संख्या में जमा होने लगी। गुप्तचरों द्वारा यह समाचार पाकर वहाँ के नायक चकित रह गये। क्या मगध की सेना कहीं और जाती हुई मार्ग-मध्य में यहाँ रुक गयी? अथवा उनका गम्यस्थान ही अपना राज्य है? यों कलिंग के अधिकारी तीव्र रूप से सोच में पड गये।

इतने में मगध सेना भयंकर आँधी की तरह कलिंग राज्य पर टूट पड़ी। जो-जो निस्सहाय लोग उनके सामने आये, उन्हें मगध के सैनिक मारते रहे। मार्ग-मध्य में जो-जो घर दिखायी पड़े, जलाते रहे और राजधानी तोशाली की ओर बढ़ते गये।

यह समाचार सुनते ही एक वृद्ध नायक ने कहा ''हमें इस दुराक्रमण का डटकर सामना करना चाहिये। हमें मगध सेना



को मार भगाना होगा।"

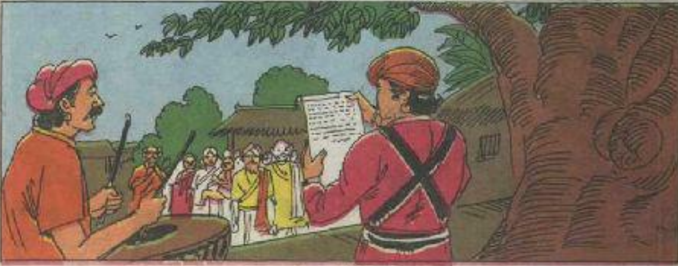
शेष सभी नायकों ने वृद्ध की पुकार का समर्थन किया। वे तुरंत अपने-अपने परगणों में लौटकर गये और युद्ध की तैयारियों में लग गये। शहरों और गाँवों में मुनादी पिटवायी गयी कि कम से कम एक व्यक्ति हर घर से सेना में भर्ती हो और अपने राज्य को शत्रु के दुराक्रमण से बचायें। उन्हें बताया भी गया कि दूसरे ही दिन वे राजधानी तोशाली पहुँच जाएँ।

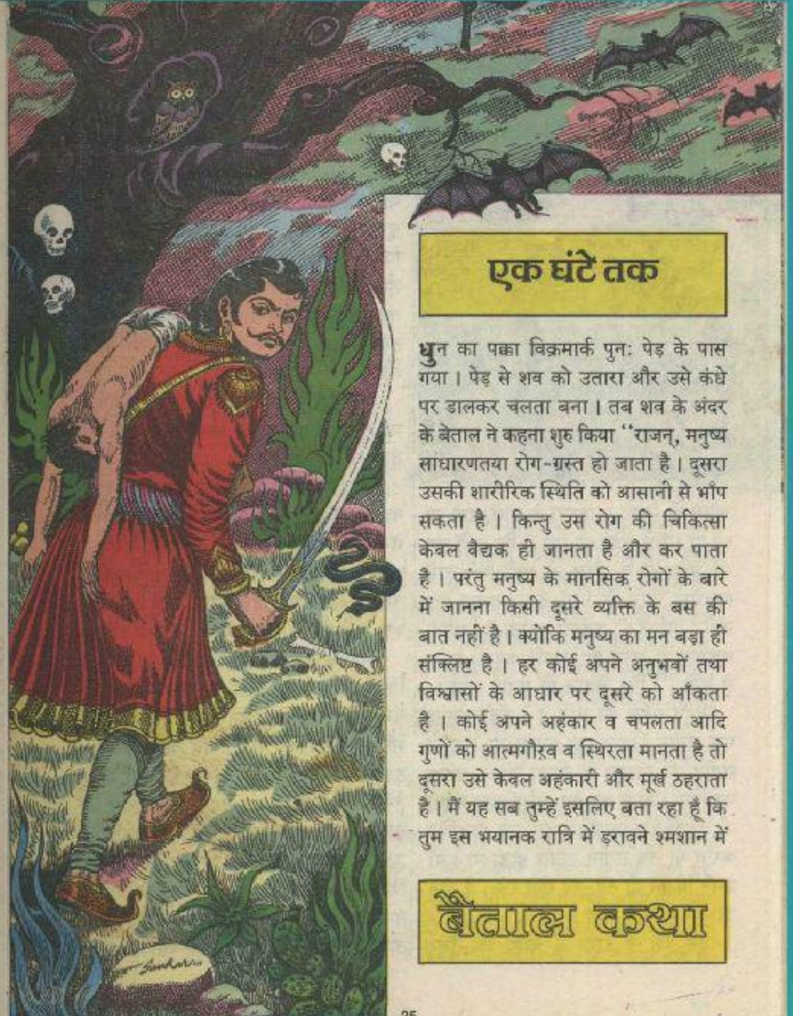
इस घोषणा को सुनकर पहले प्रजा घबरायी। पर बाद अपने-अपने घरों में जो-जो हथियार उपलब्ध हैं, लिये और राजधानी की ओर निकली। तोशाली नगर अगर शत्रु के वश हो जाए तो कलिंग राज्य पूरा का पूरा पराया हो जायेगा, इसलिए वे किसी भी सूरत में राजधानी की रक्षा करने कटिबद्ध हो गये। बच्चे, जवान, बूढ़े, झुंड के झुंड राजधानी की ओर अग्रसर होते गये।

प्रशांत गाँवों से जब सब पुरुष चले गये तब स्त्रीयाँ रोने लगीं। विलाप करने लगी, ज़ोर-जोर से आक्रंदन करने लगीं।

राजधानी पहुँचे युवकों को तोशाली के सैनिक शत्रुओं का सामना करने की कला की बारीकियाँ सिखाने में मग्न हो गये।

कलिंग के सरदारों ने सोचा तक नहीं था कि अशोक यों अकस्मात् आक्रमण कर बैठेगा। क्योंकि उन्होंने आज तक मगध के विरुद्ध कोई ऐसा काम नहीं किया, जिससे दोनों देशों में शत्रुता की भावना बढ़े। इस विषय को लेकर सरदारों ने चर्चाएँ कीं। उन सबने महसूस किया कि कलिंग की सुख-संपत्ति ही इस युद्ध का एकमात्र कारण है। मगध, कलिंग को अपने वश करके अपने देश को संपन्न व समृद्ध बनाना चाहता है। उन्हें यह भी मालूम हुआ कि विदेशों में मगध की किसी भी वस्तु की बिक्री नहीं हो रही है, क्योंकि वहाँ कलिंग से आयी वस्तुएँ ही ख़रीदी जा रही हैं। राज्य-विस्तार तथा ईर्ष्या ही इस युद्ध के मुख्य कारण होंगे। जो भी कारण हों, कलिंग के सरदारों ने प्रतिज्ञा की कि अपने देश की रक्षा करेंगे, मर जाएँगे, मिट जाएँगे, परंतु मगध को अपना देश नहीं सौंपेंगे। देश की पूरी जनता उनके साथ थी। अपने देश के लिए मर-मिटने वे सब तैयार थे। -सशेष





एक घंटे तक

धुन का पक्का विक्रमार्क पुनः पेड़ के पास गया। पेड़ से शव को उतारा और उसे कंधे पर डालकर चलता बना। तब शव के अंदर के बेताल ने कहना शुरु किया "राजन्, मनुष्य साधारणतया रोग-ग्रस्त हो जाता है। दूसरा उसकी शारीरिक स्थिति को आसानी से भाँप सकता है। किन्तु उस रोग की चिकित्सा केवल वैद्यक ही जानता है और कर पाता है। परंतु मनुष्य के मानसिक रोगों के बारे में जानना किसी दूसरे व्यक्ति के बस की बात नहीं है। क्योंकि मनुष्य का मन बड़ा ही संक्लिष्ट है। हर कोई अपने अनुभवों तथा विश्वासों के आधार पर दूसरे को आँकता है। कोई अपने अहंकार व चपलता आदि गुणों को आत्मगौरव व स्थिरता मानता है तो दूसरा उसे केवल अहंकारी और मूर्ख ठहराता है। मैं यह सब तुम्हें इसलिए बता रहा हूँ कि तुम इस भयानक रात्रि में डरावने श्मशान में

बैताल कथा



अकेले ही किसी मृगतृष्णा के पीछे भागे जा रहे हो। मुझे संदेह हो रहा है कि कहीं तुम भी अहंकारी व चपल तो नहीं हो? तुम्हें सावधान करने के लिए तुंबुर नामक एक संगीत विद्वान की कहानी सुनाता हूँ। अपनी थकावट दूर करते हुए उसकी कहानी ध्यान से सुनो।'' फिर बेताल यों सुनाने लगा।

बहुत पहले की बात है। तुंबुर नामक एक संगीत विद्वान रहा करता था। उसने संगीत की साधना में अपना जीवन अर्पित कर दिया। उसमें जब दैव-भक्ति उमड़ पड़ती थी अथवा कोई प्राकृतिक दृश्य उसे आकर्षित करता था तब संगीत उत्पन्न होता था। यों उसने कितने ही नये-नये गीत रचे। वे गीत घर-घर में गाये जाते थे।

उस देश के राजा ने चाहा कि तुंबुर आस्थान विद्वान बने। तुंबुर ने राजा के इस प्रस्ताव को अस्वीकार किया और कहा ''महाराज, विहार करते समय अपने संतोष के लिए कुछ भी गा लेता हूँ। बहुत समय तक गाता रह जाता हूँ। तब मेरे इर्द-गिर्द मनुष्य इकट्ठे हो जाएँ, पशु-पक्षी भी मेरे गीत सुनते रह जाएँ तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। किन्तु केवल मनुष्यों के बीच मनुष्यों के लिए ही गाना पड़े तो तो कहीं भी ज्यादा समय तक ठहर नहीं पाता। एक घंटे से अधिक गा नहीं पाता, इसलिए मैं आस्थानों तक ही सीमित रह नहीं सकता।''

तब राजा ने आग्रह किया कि तुंबुर एक घंटे तक ही सही अपने आस्थान में गाये। तुंबुर ने स्वीकार किया।

राजा ने मंत्री को बुलाकर कहा ''तुंबुर नामक एक महान संगीत विद्वान हमारी सभा में गाने आनेवाले हैं। उनका हठ है कि वे एक घंटे तक ही गा सकेंगे। हम इतनी अच्छी तरह से आवश्यक प्रबंध करें, जिससे शाश्वत रूप से हमारी ही सभा में वे रह जायें।''

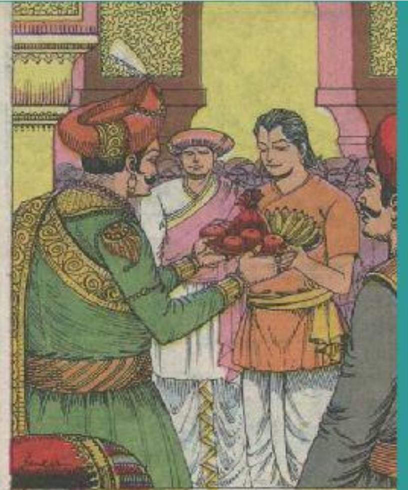
तुंबुर के गान के लिए उच्च स्तर पर प्रबंध किये गये। उसके बैठने के लिए रत्नों का कंबल बिछाया गया। उसपर दस तकियों का भी इंतज़ाम किया गया। जब वह गायेगा, तब नाचने के लिए चार सुंदर नर्तकियाँ भी तैनात की गयीं। बिना थके चँवर हिलाने-डुलाने के लिए दो बलवानों की भी नियुक्ति हुई। उस दिन नगर के सब प्रमुख निमंत्रित किये गये। पहले ही सभिकों को बता दिया गया कि जब-जब वे रुक जायेंगे, तब-तब तालियाँ बजाते रहें। मधुर फल-रसों की तो

कमी ही नहीं।

अपने वचन के अनुसार तुंबुर सभा में आया। राजा ने स्वयं पुष्पमाला पहनाकर उसका स्वागत किया। जो-जो प्रबंध किये गये, उन सबका विवरण देने के बाद तुंबुर से पूछा, ''कोई कमी रह गयी तो कृपया बताइये। आवश्यक सुधार करवाऊँगा''।

तुंबुर ने मुस्कुराते हुए कहा ''संगीत-विद्वान को चाहिये, एकमात्र प्रबंध। वह है, उत्तम श्रोता।'' कहकर वह सभा में जाकर निर्धारित आसन पर आसीन हुआ और सभिकों को संबोधित करते हुए कहा ''महाशयो, मेरे गीत संप्रदाय-बद्ध नहीं हैं। मेरे स्वर मुझी से उत्पन्न हुए हैं। अगर मुझसे कोई त्रुटि हो जाए तो मैं स्वयं उन्हें संवार लूँगा। त्रुटि क्या है, यह आपमें से किसी की समझ में नहीं आयेगी। इसलिए आपसे प्रार्थना है कि मेरी एकाग्रता में भंग न डालें। आप एकदम चुप रहें। मैं केवल एक घंटे तक ही गाऊँगा। आप कृपया ध्यान देकर सुनें।'' कहकर उसने आलापना शुरु किया।

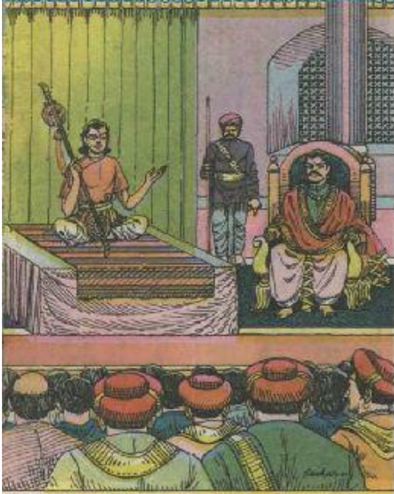
यों एक घंटा बीत गया। तुंबुर ने गाना बंद किया और कहा ''अपने वचन के अनुसार मैंने एक घंटे तक गाया। मुझे जाने की अनुमति दीजिये।'' कहकर वह उठ खड़ा हो गया। सबों ने मुक्तकंठ हो उसके गाने की भरपूर प्रशंसा की और अनुरोध किया कि कम से कम एक और घंटे तक गायें। तुंबुर ने उनकी विनती स्वीकार नहीं की। फलाहार खाने और फलों का रस पीने के बाद, राजा की दी भेंटें स्वीकर करके वहाँ से चला गया। अपने प्रबंधों से तुंबुर आकर्षित हुए नहीं होंगे,



इसीलिए चले गये, यों सोचकर राजा बहुत ही निराश हुआ। उसने मंत्री से कहा, ''इसमें कोई संदेह नहीं कि तुंबुर महा विद्वान हैं। किन्तु यह निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ कि ये महा विद्वान हैं अथवा अहंकारी व चपल चित्त के, कुछ गुप्तचरों को इनके पीछे-पीछे भेजिये। एक घंटे से अधिक कहीं गायें तो मुझे सूचित कीजिये।''

तब से कुछ गुप्तचर तुंबुर का पीछा करते रहे।

देश भर में यह बात फैली कि राजस्थान में तुंबुर का स्वागत-सत्कार बड़े ही पैमाने पर हुआ। कितने ही रईसों ने उसे अपने घर पर बुलाया और उससे गवाकर अपने को धन्य माना। तुंबुर किसी के भी घर जाने और गाने से मना नहीं करता था, परंतु एक घंटे से



अधिक कहीं भी गाता नहीं था।

बहुतों की जिद थी कि तुंबुर से एक घंटे से अधिक गवायें। यह हठ ज़ोर पकड़ता गया। यहाँ तक कि कुछ रईसों ने घोषणा कर दी कि जिस घर में तुंबुर एक घंटे से अधिक गायेगा, उस घर के यजमान को दो लाख अशर्फ़ियाँ पुरस्कार में दी जायेंगीं तथा उसका वैभवपूर्वक स्वागत-सत्कार होगा।

उसके बाद तुंबुर के पीछे-पीछे जानेवालों की संख्या बढ़ती गयी। कुछ रईस प्रसिद्धि पाने के लिए उसके पीछे-पीछे जाने लगे तो कुछ ग़रीब भी उसके साथ ही रहने लगे। उनका सोचना था कि अपने प्रयत्न में वे सफल हो जाएँगे तो ग़रीबी के इस शाप से शाश्वत रूप से मुक्ति तो मिलेगी। वह सबों के घरों में गाता परंतु एक घंटे से अधिक कहीं नहीं गाया।

पहले लोग कहते रहते थे कि तुंबुर निस्वार्थी व दयाशील हैं। किसी ग़रीब के यहाँ एक घंटे तक गा लेता तो उस ग़रीब की ग़रीबी दूर हो जाती, लेकिन वह ऐसा करने से साफ़ इनकार करता था, टस से मस न होता था, इसलिए अब लोग कहने लगे कि वह अहंकारी है, चंचल स्वभाव का है।

स्वीकारपुर में सुनाथ नामक एक दरिद्र था। उसे संगीत का बड़ा शौक़ था। बहुत बार वह तुंबुर के पीछे-पीछे गया और एकांत में उसके गानों को श्रद्धा से सुनता रहा। वह बहुतों से कहता भी रहता था कि तुंबुर जैसा विद्वान अब तक न पैदा हुआ और न पैदा होगा। वह कहता भी था कि अनुसरण करना हो तो ऐसे विद्वान का ही अनुसरण करना चाहिये। ऐसे विद्वानों को चार दीवारों तक सीमित रखना अविवेक और अन्यायपूर्ण कार्य है। सुनाथ को यह जानकर बहुत दुख हुआ कि हाल ही में लोग तुंबुर को अहंकारी व चपल चित्त का बता रहे हैं। वह एक बार उससे मिला और निवेदन किया "महानुभाव, आपका दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हुआ। यह मेरे लिए अद्भुत आनंद है। आप जैसे ज्ञानी को लोग अहंकारी समझ रहे हैं। उनकी टिप्पणियाँ सुनकर मुझे असीम दुख हो रहा है। मेरे घर आइये और गाकर आप पर आयी इस निंदा को सदा के लिए दूर कीजिये। यह मेरी प्रार्थना है।"

तुंबुर ने उसे प्यार-भरी नज़र से देखा और कहा "प्रजा की दरिद्रता को दूर करना राजा का कर्तव्य है। इस जिम्मेदारी को कुछ समाज-सेवक संभालेंगे, तो भी ठीक है। अगर कोई मुझे अहंकारी समझता है, तो समझने दो। मैं इस संबंध में कुछ नहीं कर सकता। मैं जो कर सकता हूँ, वही करूँगा। जो मैं नहीं कर सकता, उसके पीछे दौड़ना मूर्खता ही साबित होगी। तुम्हारे घर में भी एक घंटे से अधिक गा नहीं सकता। तुम्हें मेरी शर्त स्वीकार हो तो तुम्हारे घर आने में मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

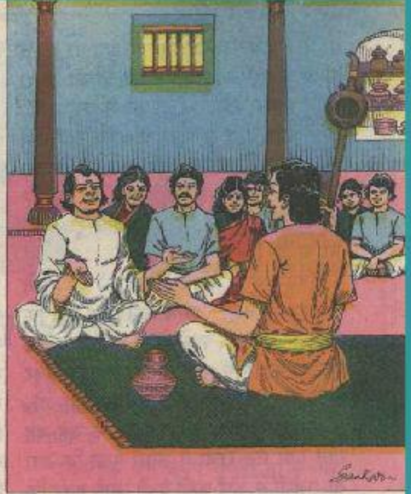
"आपने कहा कि मैं जो कर सकता हूँ, करूँगा। यही मेरे लिए काफ़ी है।" सुनाथ ने विनयपूर्वक कहा। तुंबुर सुनाथ के घर गाने गया।

सुनाथ ने किसी और को अपने यहाँ नहीं बुलाया। घर में किसी भी प्रकार के प्रबंध नहीं किये। तुंबुर के बैठने के लिए उचित व उच्च आसन मात्र का प्रबंध किया। वह अपने परिवार सहित उसके सामने संगीत सुनने बैठ गया।

तुंबुर ने गाना शुरु किया। श्रोता श्रद्धा-पूर्वक सुनने लगे। ठीक एक घंटा समाप्त हो जाने के बाद तुंबुर ने कहा "एक घंटा पूरा हो गया"।

सुनाथ ने सविनय कहा "महोदय, घंटा तो पूरा हो गया। किन्तु गीत पूरा नहीं हुआ। गीत की पूर्ति के बिना बीच में ही रुक जाना न्यायसम्मत नहीं है"।

तुंबुर ने आश्चर्य-भरे नेत्रों से उसे देखा और मुस्कुराते हुए दो और घंटों तक लगातार गाता ही रहा। सुनाथ का पूरा परिवार आनंद से झूम उठा।



गुप्तचरों के द्वारा इस विषय की जानकारी पाने के बाद राजा ने रईसों से सुनाथ को दो लाख अशर्फ़ियाँ दिलवायीं और साथ ही स्वयं भी उसे भेंटें दीं।

बेताल ने विक्रमार्क को यह कहानी सुनायी और कहा "राजन्, तुंबुर की व्यवहार-शैली असंगत व अटपटी लगती है। वह एकसमान नहीं दीखती। राजा ने ही जब उसे एक घंटे से अधिक समय तक गाने को कहा तो उसने साफ़-साफ़ इन्कार कर दिया। लोगों ने खुल्लमखुल्ला कहा भी कि यह उसके अहंकार व चंचलता का उदाहरण है, तो भी उसने उनकी परवाह नहीं की। उन टिप्पणियों पर उसने ध्यान ही नहीं दिया। ऐसा विद्वान सुनाथ के घर में घंटों तक क्यों गाता रहा? क्या लंबी अवधि तक गाकर वह सुनाथ को

दो लाख अशर्फ़ियाँ दिलाना चाहता था ? उसे दरिद्र से भाग्यवान बनाने की उसकी इच्छा थी ? अगर यही सच हो तो मैं कहूँगा कि उसने राजा के सम्मुख अपना अहंकार दर्शाया और सुनाथ के पास अपनी चंचलता। मेरे इन संदेहों के समाधान जानते हुए भी चुप रह जाओगे तो तुम्हारे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे''।

विक्रमार्क ने उसके संदेहों को दूर करने के उद्देश्य से कहा ''इसमें काई संदेह नहीं कि तुँबुर का व्यवहार पहले से ही एकसमान था, एक ही पद्धति में था। यह स्पष्ट है कि तुँबुर में संगीत कला के प्रति अपार श्रद्धा थी, असीम विश्वास था। राजस्थान में जब यह गाने गया तब राजा ने उससे पूछा कि क्या मेरे प्रबंधों में कोई कमी है तो उसने कहा कि संगीत विद्वान को चाहिये उत्तम श्रोता। ऐसे उत्तम श्रोता को उसने सुनाथ में पाया। एक घंटे तक गाने के बाद वह रुक जाता था और कहता था कि एक घंटा पूरा हो गया। तब श्रोता आग्रह करते थे कि एक और घंटा गाइये। किसी ने तब तक कभी भी यह नहीं कहा कि आप गीत को आधा ही गाकर क्यों रुक गये ? गीत को पूरा क्यों नहीं करते ? इसका यह मतलब हुआ कि वे उत्तम श्रोता नहीं हैं। केवल सुनाथ ही एक ऐसा उत्तम श्रोता था, जिसने तुँबुर से पूछने का साहस किया, क्योंकि वह संगीत-प्रिय था। यह सच्चाई जानकर ही तुँबुर ने लंबी अवधि तक गाया और उसे आनंदित किया। अब रही, दरिद्र सुनाथ को रईसों से दो लाख अशर्फ़ियां दिलवाने की बात। इस प्रकार के लौकिक विषयों के प्रति उसके क्या विचार हैं, यह उसकी बातों से ही प्रकट हो जाता है। वह सब दरिद्रों के घर घंटे से अधिक गाये और उन्हें लाखों अशर्फ़ियाँ दिलवाये, उनकी दरिद्रता को मिटाने की चेष्टा करें तो यह उसकी मूर्खता ही कहलायी जायेगी। इसीलिए उसने कहा भी कि दरिद्रता को दूर करना राजा का कर्तव्य है, उसकी जिम्मेदारी है। इन सब विषयों की गहराई में जाने पर हमें स्पष्ट मालूम हो जाता है कि निस्संदेह तुँबुर न ही अहंकारी था, न ही चपल ?''

राजा के मौन-भंग में सफल बेताल शव सहित फिर पेड़ पर जा बैठा।

आधार-आनंद मिश्रा की रचना





गहरी चाल

मराल देश की राजनर्तकी के पैर में मोच आ गयी। दस दिनों से वह सभा में आयी ही नहीं। राजवैद्य की दवाओं का कोई असर नहीं हुआ। राजा दिन भर शासन-संबंधी कार्यों में व्यस्त रहते थे। क्षण भर की भी फ़ुरसत नहीं थी। जब वे थक जाते थे तो राजनर्तकी का नृत्य देखते थे। अपना मन बहलाते थे। इस दैनिक कार्यक्रम में थोड़ा भी फ़रक़ आ जाए तो उनका मन अशांत हो उठता था।

क्रमशः राजा शासन-संबंधी कार्यों पर अपनी दृष्टि केंद्रित कर नहीं पा रहे थे। राजा के रुख को देखकर मंत्री परेशान हो उठा। राजनर्तकी के नृत्य पर राजा के इस मोह को देखकर मंत्री चकित रह गया।

मंत्री स्वयं राजनर्तकी की स्थिति को देखने और जानने के लिए उसके भवन में जाने निकला। जब वह भवन में प्रवेश कर रहा था तब अंदर से आती हुई आवाज़ों को सुनकर दरवाज़े पर ही रुक गया।

राजनर्तकी उस समय अपनी माँ से कह रही थी ''देखा माँ, मोच का बहाना किया और दस दिनों से दरबार नहीं गयी। नाची नहीं। इससे राजा को मेरा मूल्य मालूम हो गया। राजा अब हर दिन दरबार में हाज़िर नहीं हो रहे हैं। अपने ही विश्राम कक्ष में रह रहे हैं। और एक सप्ताह तक इस मोच के बहाने की आड़ में घर पर ही रह जाऊँगी तो मुझे जो चाहिये, वे दे देंगे, मेरी इच्छा की पूर्ति अवश्य करेंगे। मैं तुमसे पहले भी कह चुकी थी कि मैं एक छोटे से परगणे की ज़मींदारिणी बनना चाहती हूँ''।

नर्तकी की माँ कह रही थी ''पता नहीं बेटी, क्या होगा। जब मैं जवान थी, तब यहाँ-वहाँ के राज दरबारों में नाचा करती थी। राजा जो भेंटें देते थे, उन्हें सहर्ष स्वीकार

करके संतृप्त रहती थी। मैं ही नहीं बल्कि शेष और राजनर्तकियाँ भी ऐसा ही करती थीं। हमारी वह पीढ़ी गुज़र गयी। लगता है, इस पीढ़ी की नर्तकियाँ को कला पर नहीं, बल्कि धन व सोने का अधिकाधिक मोह है।"

मंत्री ने उनकी बातचीत सुनी। अब उसे स्पष्ट मालूम हो गया कि राजनर्तकी का सभा में न आने का क्या कारण है। वह वहीं से चुपके से बाहर आ गया। वह सीधे राजा के विश्राम कक्ष में गया और कहा "महाराज, जिन राजवैद्यों ने नर्तकी का हाल परखा, उनका कहना है कि वह दो-तीन और हफ्तों तक नाच नहीं पायेगी। अतः शाम के समय आपके मन को आह्लादित करने के लिए एक और अन्य प्रकार का प्रबन्ध किया।" कहकर वह अंदर गया और कमरे के कोने में पडे शतरंज की सामग्री ले आया।

राजा ने निरुत्साह-भरे स्वर में कहा "यह खेल तो मैं जानता ही नहीं"।

"महाराज, मैं सिखाऊँगा। प्रयत्न हो तो कौन-सा काम असाध्य है ? कोई ऐसी विद्या नहीं, जो सीखने पर सीखी नहीं जा सकती। महाराज, जो खेल खेलना है, वह यों है। चाल पर चाल चलिये। वह भी गहरी चाल। यह खेल मनुष्य की मेधा को शक्ति देता है। उसे और पैना करता है।" मंत्री ने यों बडे ही प्रभावशाली ढंग में शतरंज की खूबियों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला।

राजा ने मन लगाकर खेल सीख लिया। यों एक महीना बीत गया। एक दिन राजा ने मंत्री से कहा "महामंत्री, दिन भर हम शासन की जिम्मेदारियों को निभाते हुए व्यस्त रहते हैं। संध्या के समय शतरंज का यह खेल खेलते हैं। इससे मनोरंजन भी हो जाता है और साथ ही हमारी बुद्धि भी पैनी होती है। अब उस राजनर्तकी से हमें क्या लेना-देना है। शतरंज का यह खेल सीख लेने के बाद मुझे नृत्य देखने की इच्छा भी नहीं हो रही है। उस राजनर्तकी को योग्य पुरस्कार दीजिये और आस्थान से उसे छुट्टी दे दीजिये।"

यह समाचार पाकर राजनर्तकी की माँ ने दुख-भरे स्वर में अपनी बेटी से कहा "मैंने तुम्हें पहले ही सावधान किया था। तुमने तो अपने पैरों पर खुद कुल्हाड़ी मार ली। इस दुर्दशा का कारण तुम्हारी दुराशा है।"



हरित द्वीप

वर्णन : मीरा नायर ◆ चित्रकार : गौतम सेन



अंडमान में चार मुख्य द्वीप-समूह हैं – *उत्तरी, मध्य, दक्षिणी* और *लघु अंडमान.*

उत्तरी अंडमान के काफी नजदीक दो निर्जन टापू हैं – *बैरन* और *नारकोंडम,* जो कि ज्वालामुखियों द्वारा निर्मित हैं. बैरन टापू का अंडमानी नाम है – *मोलाटार्कोना* यानी धुंधुआता टापू. यह एक ज्वालामुखी है, जो समुद्र में से सीधे 608 मीटर सिर उठाये खड़ा है. भारत का यह एकमात्र सक्रिय ज्वालामुखी है. पूरे 200 वर्ष शांत रहने के बाद यह 1991 ई. में फटा था. नारकोंडम भी ज्वालामुखी ही है, मगर बुझा हुआ.

पोर्ट ब्लेयर जो कि उष्णकटिबंध के इस स्वर्ग की राजधानी है, दक्षिणी अंडमान में है. समुद्री जहाज यहीं आ कर ठहरते हैं. जब जहाज इसके मुख्य बंदरगाह *हड्डो* में पहुंचते हैं तो डॉल्फ़िन उनका स्वागत करते हैं. उनकी मजेदार उछलकूद यात्रियों का मन मोह लेती है.

पोर्ट ब्लेयर का नाम अंग्रेज सर्वेक्षक आर्चीबाल्ड ब्लेयर के नाम पर रखा गया था. उसी ने 1789 में ईस्ट इंडिया कंपनी की बस्ती बसाने के लिए यह जगह चुनी थी.

1942 में इन द्वीपों पर जापान का कब्जा हो गया था. उसी दौर में 1943 के दिसंबर में सुभाषचंद्र बोस यहां आये थे और उन्होंने अंडमान को 'शहीद द्वीप' और निकोबार को 'आजाद द्वीप' का नाम दिया था. जापानियों ने अपने छोटे-से शासनकाल में यहां सीमेंट के जो तलघर (बंकर)



वीर सावरकर ✝ सेल्युलर जेल, जिसमें सावरकर-बंधु तथा अन्य अनेक क्रांतिवीर दीर्घ काल तक कैद रहे.

बनाये, वे आज भी मौजूद हैं. उन्होंने अनेक फलों व सब्जियों का प्रवेश यहां कराया. अब भी यहां के कई बाशिंदे धड़ल्ले से जापानी बोलते हैं.

भारत के आजाद होने बाद बहुत-से भारतीय पोर्ट ब्लेयर में आ कर बस गये. उनमें सबसे बड़ी तादाद बंगालियों की थी, उसके बाद तमिलभाषियों की. मगर यहां की आम भाषा हिंदी है.

पोर्ट ब्लेयर में सबसे मशहूर स्थान है – *सेल्युलर जेल.* उसका यह नाम इसलिए पड़ा कि उसमें सिर्फ 'सेल' यानी कोठरियां हैं – पूरी 698 कोठरियां !!

इसका निर्माण अंग्रेजों ने 1886 से 1906 के बीच में किया था. उद्देश्य था – भारत के ऐसे कैदियों को वहां रखना, जो अंग्रेजों की नजरों में 'खतरनाक' थे. खूनी अपराधी ही नहीं, अनेक देशभक्त क्रांतिकारी भी इन कालकोठरियों में रखे गये थे. उनमें से कई तो यहां से जिंदा नहीं लौटे.

पोर्ट ब्लेयर का चैथम सॉ-मिल्स एशिया के सबसे पुराने लकड़ी-चिराई कारखानों में से है. इड्डो में इसके शोरूम में लकड़ी के नायाब नमूने देखे जा सकते हैं.

रॉस आइलैंड पहले यहां के अंग्रेजी प्रशासन का मुख्यालय था. यह पोर्ट ब्लेयर से कुछ ही कि.मी. हट कर है. एक बार यहां भूचाल आया, जिसके बाद इसे खाली कर दिया गया.

पोर्ट ब्लेयर से 26 कि.मी. दूर *चिड़िया टापू* है. पक्षी-प्रेमियों का स्वर्ग समझिए इसे. यहां बतासी पक्षियों के घोंसलों की भरमार है. इन घोंसलों का सूप बड़ा स्वादिष्ट माना जाता है. उन्हें बटोरने के लिए म्यांमा (बर्मा) व दूसरे देशों से लोग आते थे. साथ ही वे यहां के मूल निवासियों को पकड़ कर ले जाते थे और गुलामों के रूप में बेच डालते थे. इस कारण यहां के मूल निवासी बाहरी लोगों से डरने और द्वेष करने लगे.



एक ओंगे परिवार



निकोबारी झोपड़ी

नृत्य करते निकोबारी

बाहरवालों से सबसे ज्यादा दुश्मनी रखने वाली स्थानीय आदम जातियां हैं – *जारवा* और *सेंटिनेली.* जारवा संख्या में 200 के करीब हैं और ज्यादातर *दक्षिणी* और *मध्य अंडमान* के पश्चिमी तट पर रहते हैं. वे शिकार पर जीते हैं और उनका रहन-सहन अभी भी प्रस्तर-युग के आदमियों जैसा है. सेंटिनेली *उत्तरी सेंटिनेल द्वीप* के निवासी हैं. वे किसी बाहरी व्यक्ति को अपने पास नहीं फटकने देते. विश्व के सबसे अलग-थलग लोगों में उनकी गिनती होती है.

ओंगे लोगों की संख्या लगातार कम होती जा रही है. वे *लघु अंडमान* में ड्युगोंग समुद्री जलधारा के पास रहते हैं. इनमें औरत-मर्द दोनों सिर मुंडाये रहते हैं और चेहरे व बदन पर चिकनी मिट्टी पोतते हैं. ये केकड़े की संड़सी से बने पाइपों में तंबाखू पीते हैं.

अंडमानी घुमंतू जीवन छोड़ कर खेती-बारी करने लगे हैं. यहां की चारों मुख्य जनजातियां – जारवा, सेंटिनेली, ओंगे और अंडमानी – नीग्रिटो यानी हब्शी नस्ल की हैं.



अपने काम में जुटा हुआ एक आदिवासी



शोम्पेन मां और बच्चा

अंडमान द्वीपों से *टेन डिग्री चैनल* नाम की समुद्री जलधारा पार करके हम पहुंचते हैं *निकोबार द्वीप-समूह* में. टेन डिग्री चैनल को विश्व की सबसे खतरनाक समुद्री जलधाराओं में गिना जाता है. एक दूसरे से सिर्फ 195 कि.मी. की दूरी पर होते हुए भी इन दोनों द्वीप-समूहों की संस्कृतियों में कोई मेल नहीं है. निकोबार द्वीप काफी छोटे हैं. 19 में से सिर्फ 12 में बस्ती है. इनमें से सबसे बड़ा है *ग्रेट निकोबार*; सबसे अधिक विकसित है *नानकौरी*; और सबसे उत्तरी द्वीप *कार निकोबार* सबसे घना बसा हुआ है.

कार निकोबार पहाड़ी इलाका है. इसमें दो आदिम जातियां *निकोबारी* और *शोम्पेन* रहती हैं. दोनों मंगोलीय नस्ल की हैं और बाहरवालों से मित्रता रखती हैं. निकोबारी लोग खंभों पर गुंबदनुमा झोपड़ियां बनाते हैं, जिनमें पहुंचने के लिए सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं.

शोम्पेन निकोबार के सबसे दक्षिणी टापू *ग्रेट निकोबार* के घने जंगलों में रहते हैं. शहद के बड़े ही शौकीन होते हैं ये. छत्ते से शहद निकालने से पहले ये किसी बूटी के पत्तों को मुंह में चबाकर उसका रस सारे शरीर और चेहरे पर लगा लेते हैं, जिससे मधुमक्खियां इन्हें डंक नहीं मारतीं.

ग्रेट निकोबार के पश्चिमी तट पर *मेगापोड* द्वीप है. मेगापोड नाम का दुर्लभ पक्षी यहां घोंसला बनाता है.

ग्रेट निकोबार का सबसे दक्षिणी छोर *पिग्मैलियन पॉइंट* कहलाता था. अब उसे *इंदिरा पॉइंट* कहते हैं. इंडोनीशिया का सुमात्रा द्वीप यहां से सिर्फ 150 कि.मी. दूर है. यह अंडमान-निकोबार द्वीप-समूहों का ही नहीं, बल्कि भारत का भी सबसे दक्षिणी छोर है. यहीं समाप्त होती है हमारी समुद्रतट की यात्रा.

मेगापोड पक्षी



अब तैयार हो जाइए एक और आकर्षक तथा ज्ञानवर्धक यात्रा के लिए. यह यात्रा संपन्न होगी कर्नाटक और तमिलनाडु की सबसे बड़ी नदी कावेरी के संग-संग. हमारी यह *कावेरी-यात्रा* जनवरी 1998 में आरंभ होगी और *भारत की नदियां* नाम की लेखमाला का अंग होगी.



भुलक्कड़ विशाल

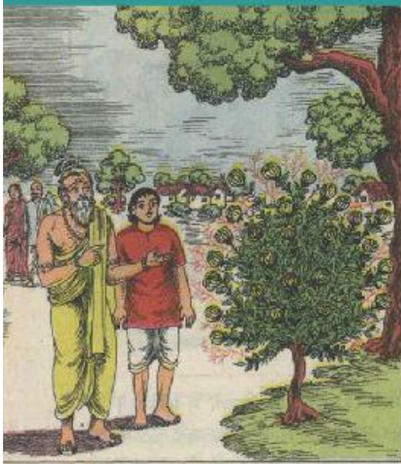
पवनघाट नामक गाँव में जगन्नाथ रहता था। उसके चार बेटे थे। विशाल उसका आख़िरी बेटा था। बाकी तीनों ने अच्छी शिक्षा पायी और सुस्थिर जीवन बिताने लगे। विशाल अच्छी तरह पढ़-लिख नहीं पाया। इसका कारण था, उसका भुलक्कड़पन।

जो भी पढ़े, विशाल बिल्कुल भूल जाता था। यह उसका सहज गुण था। केवल पढ़ाई में ही नहीं, अन्य कई विषयों में भी उसका यह भुलक्कड़पन बना रहा। दोस्तों से खेलता रहता तो भूल जाता था कि चोर कौन है ? खेलों में तल्लीन हो जाता तो खाना खाना भी भूल जाता था । खाना खा लेता तो भूल भी जाता था कि मैंने खाना खा लिया। माँ बुलाती तो जाता और दुबारा खाना खा लेता था। पैसे देकर दुकान भिजवाते तो भूल जाता कि कौन-सी चीज़ खरीदने के लिए उसे भेजा गया। जो सूझता, खरीद लेता, पर उसे याद नहीं रहता था कि कितने में खरीदा।

माता-पिता अपने भुलक्कड़ बेटे के बारे में बहुत ही चिंतित रहते थे। साथ रहकर उन्होंने अच्छी तरह पढ़ाया। पर उसकी याददाश्त पर कोई असर नहीं पड़ा। उसके सिर पर नींबू का रस बी निचोड़ते रहते थे। फिर भी भुलक्कड़पन जैसा था, वैसा ही रहा। सरस्वती लेह्य उसे खिलाया, परंतु कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

विशाल अब पंद्रह साल का हो गया। माता-पिता उसकी इस स्थिति को देखकर और दुखी होने लगे। विशाल के तीनों बड़े भाई बहुत ही अच्छे स्वभाव के थे। उन तीनों ने अपने माता-पिता से कहा "हम सुखी हैं। बीस एकड़ों की पूरी ज़मीन हम विशाल को दे देंगे। हम किसी प्रकार की आर्थिक सहायता आपसे नहीं माँगेंगे। हम जी-जान से मेहनत करेंगे और अपने पैरों पर खुड़े खड़े हो जाएँगे।

शकुंतला गार्गी



आप दोनों परेशान मत होइये।'' वे यों अपने माता-पिता को ढाढ़स बंधाते थे।

किन्तु विशाल के माता-पिता अपने उन तीनों बेटों से कहा करते थे ''भुलक्कड़ के पास कितनी भी संपत्ति क्यों न हो, क्या फ़ायदा। उसे धोखा देना बहुत आसान है। हम जब तक ज़िन्दा हैं, तब तक हम उसकी देखभाल करेंगे। पर हमारे मर जाने के बाद आप तीनों भी कब तक उसकी देखभाल करेंगे। तुम्हारी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ भी बढ़ेंगीं। बड़े हो जाने के बाद अपने को खुद संभालना चाहिये। भला कब तक कोई किसी और पर निर्भर रह सकता है ?''

उसी दौरान एक योगी उस गाँव में आया। विशाल के माता-पिता को मालूम हुआ कि किसी भी प्रकार की समस्या का हल निकालने में वह योगी समर्थ है। तो वे उस योगी से मिले। उन्होंने विशाल की स्थिति पर प्रकाश डाला।

''अपने बेटे को एक बार मेरे पास ले आइये। मैं देखूँगा कि उसके भुलक्कड़पन को घटाने का क्या कोई उपाय है ? यह संभव है या नहीं।'' योगी ने कहा।

दूसरे दिन विशाल माता-पिता समेत योगी के पास गया। योगी विशाल को लेकर पास ही के फूलों के एक पौधे के पास गया। उस पौधे में पीले फूल थे। टहनियां काँटों से भरी हुई थीं।

योगी ने विशाल से कहा ''कुल बारह फूल तोड़ो। कांटे न चुभें, सावधानी बरतो और तोड़ो। तुम्हारा भुलक्कड़पन घट जाए, इसके लिए एक अच्छी दवा सुझाऊँगा।''

विशाल आठ फूल तोड़कर ले आया और योगी को दिया। वह भूल गया कि योगी ने कितने फूल तोड़ने के लिए उससे कहा था। फूल तोड़ते समय उसने जागरूकता नहीं बरती, इसलिए उसकी उंगलियों में कांटे चुभ गये। थोड़ा-सा खून भी बह गया।

''बाप रे, कांटे चुभ गये ! मैंने तुम्हें सावधान भी किया था, फिर भी तुमने सावधानी नहीं बरती, जिससे तुम विपत्ति में फंस गये। इस पौधे के कांटों की नोक में विष होता है। परंतु वह विष अपना प्रभाव तुरंत नहीं दिखाता। सही चिकित्सा न कराने पर एक साल ही के अंदर तुम रोग-ग्रस्त हो जाओगे और अपना प्राण खो डालोगे''।

विशाल ने दुखी होते हुए कहा ''आपको पहले ही मुझसे यह बात बतानी थी। और

सावधानी से काम लेता। आप जानते भी हैं कि मैं भुलक्कड़ हूँ, फिर भी आपने मुझसे फूल क्यों तुड़वाये ?''

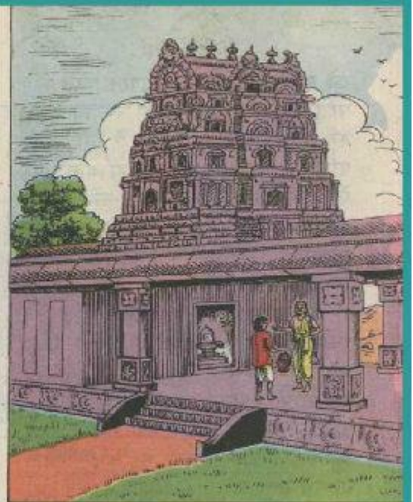
योगी ने कहा ''अब उन बेकार बातों को छोड़ो। मैं तुम्हें दस गोलियाँ दूँगा। हर दिन भोजन करने के बाद दोनों वक्त एक-एक गोली मुँह में डाल लेना। तुमने आठ फूल तोड़े। उन आठों फूलों को सायंकाल शिव के मंदिर में देना। यों पाँच दिनों तक हर दिन आठ फूलों के हिसाब से शाम को शिव के मंदिर में देते रहना। आगे से इस बात को याद रखना कि तुम्हारी उँगलियों में कांट न चुभें।''

''योगिवर, मैं तो भुलक्कड़ हूँ। ये सारी बातें मेरी माताजी से कहियेगा। वह संभालेगी।'' विशाल ने उपाय बताया। योगी ने 'न' के भाव में अपना सिर हिलाते हुए कहा ''अगर यह बात मुझे और तुम्हारे अलावा तीसरे व्यक्ति को मालूम हो जाए तो वैद्य-पद्धति काम में नहीं आयेगी, उपयोगी सिद्ध नहीं होगी। सब कुछ तुम्हें ही करना होगा। फिर कभी बताऊँगा कि तुम्हें और क्या-क्या करना होगा। उसके बाद तुम्हें भी पूछना नहीं चाहिये कि आगे मुझे क्या करना चाहिये। यह बात अच्छी तरह याद रखो।''

बाद उसने विशाल को उसके माता-पिता के सुपुर्द किया। वे तीनों वहाँ से चले गये।

ठीक पाँच दिनों के बाद विशाल अपने माँ-बाप के साथ योगी के पास आया और कहा ''योगिवर, आपने जो भी कहा, बिना भूले सब कुछ किया। आप बताइये कि आगे मुझे क्या करना है और मेरे भय को दूर कीजिये''।

''अब सबको सब कुछ मालूम भी हो



जाए, तो काई बात नहीं। बताओ कि तुमने क्या-क्या किया ?'' योगी ने पूछा।

''हर दिन दोनों वक़्त खाने के बाद आपकी दी हुई गोलियाँ खाता था। यों मैंने पाँचों दिन किया। हर दिन आठ फूल तोड़ता था और शाम को शिव के मंदिर में दे आता था। एक भी बार कांटे नहीं चुभे।'' विशाल ने बताया।

''शाबाश, पाँच दिनों के पहले मैंने दो ही बातें इसे बतायीं और उन्हें अच्छी तरह से याद रखकर यह उन्हें अमल में ले आया। अब आपके विशाल का भुलक्कड़पन दूर हो गया। है न ?'' योगी ने पूछा।

बाद योगी ने, विशाल के माता-पिता अच्छी तरह से विषय जानें, इसके लिए सविवरण यों बताया ''भगवान सब मनुष्यों

को समान रूप से बुद्धि प्रदान करते हैं। परंतु कुछ सुस्त लोग उसका उपयोग सक्रम रूप से नहीं करते। हर काम के लिए दूसरों पर ही निर्भर रहते हैं। वे नहीं जानते कि ऐसे सुस्त की सहायता करके उसे कितनी हानि पहुँचा रहे हैं। इस उम्र में आवश्यक सावधानी न बरतकर बड़ा होने पर भविष्य में पछताते रहते हैं।

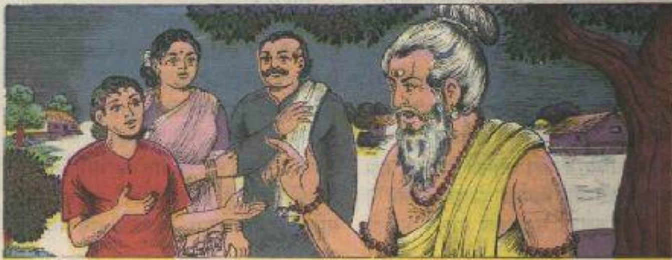
विशाल अक्लमंद है, लेकिन सुस्त है। इसलिए उसने भुलक्कड़पन को अपनी आदत बना ली। भुलक्कड़ को कोई भी कुछ भी नहीं सौंपते। ग़लती करने पर भी उसे नहीं डाँटते। दोस्त भी उसपर दया दिखाने लगते हैं। खेलों में हार भी जाए, वह कोई नुकसान महसूस नहीं करता। उसकी ज़रूरतें पूरी करने के लिए उसके भाई या माता-पिता हमेशा मौजूद रहते हैं। माँ उसे बुलाकर खाना खिलाती है। जब विशाल को लगा कि भुलक्कड़पन उसकी जान भी ले सकता है, तो उसमें भय उत्पन्न हो गया और उसकी याददाश्त अद्भुत रूप से काम करने लगी।

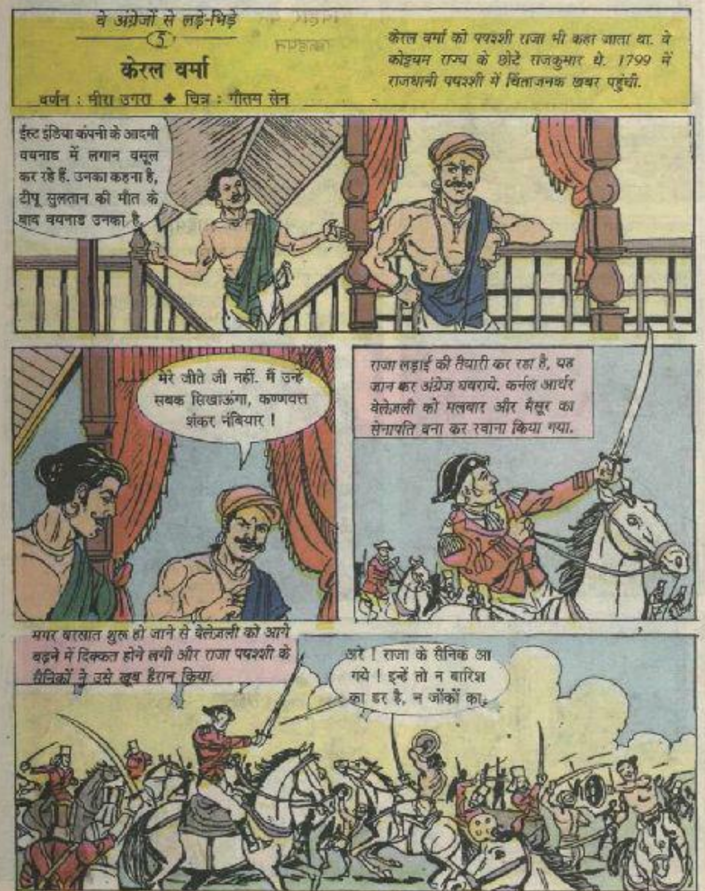
मैं इस बात की परीक्षा लेना चाहता था कि सचमुच इसमें बुद्धि का लोप है या सुस्ती की आदत पड़ जाने के कारण इस प्रकार व्यवहार कर रहा है अथवा जान बूझकर भुलक्कड़पन का शिकार बनता जा रहा है। यह जानने के लिए ही मैंने इन पाँच दिनों में उसमें प्राण-भीति के बीज बोये। अब मालूम हो गया कि उसकी याददाश्त में कोई खोट नहीं है। आगे भी इसका भुलक्कड़पन जारी रहा तो विशाल के हिस्से की तीन एकड़ों की जमीन भी इसके भाइयों में बाँट दीजिये। इससे कहिये कि आगे वह अपने भाइयों की सहायता पर ही निर्भर रहे। पूरी जायदाद इसे ही देने की सोच को अपने दिमाग़ से हटाइये।'' योगी ने विशाल के माता-पिता को सलाह दी।

विशाल ने तुरंत कहा ''मेरा हिस्सा तीन एकड़ ही क्यों ? मेरे हिस्से में पाँच एकड़ आते हैं''।

योगी ने चुटकी बजाकर हँसते हुए कहा ''आपने देखा कि आपके बेटे विशाल को सुस्पष्ट रूप से मालूम है कि उसके हिस्से में कितनी ज़मीन आती है।''

तदनंतर भुलक्कड़पन ने विशाल को कभी भी छूने का प्रयत्न ही नहीं किया।






अक्तूबर 1802 में एडचेन्न कुंगन नायर ने पनमरम के किले पर धावा बोला


बाद में नायर ने पुलपल्ली में एक मंदिर के बाहर लोगों को संबोधित करते हुए कहा :
भाइयो, यह भूमि हमारी है. आओ, हम सब मिल कर अत्याचारी फिरंगियों को खदेड़ दें.


3,000 मर्द एडचेन्न नायर के झंडे तले आ जुटे. उन्होंने मैसूर से मन्नतोडि तक पूरे रास्ते को रोक लिया. इससे अंग्रेजों की छावनी में खलबली मच गयी.
हमारी रसद और कुमुक पूरी तरह काट दी गयी है.


अच्छा... दूर से आनेवाली फौजों की राह अक्सर रोक ली जाती है. हम स्थानीय लोगों की भरती करके सशस्त्र पुलिस खड़ी करेंगे.


सितंबर 1800 में कर्कपैट्रिक ने अपने वरिष्ठ अफसरों को लिखा :
"हमारे सामने सबसे कठिन समस्या पयश्शी राजा का प्रतिरोध करने की है. उसे हरा दिया तो सब ठीक हो जायेगा. मलबार में राजा की शक्ति बढ़ रही है."


मई 1801 में एक विशाल सेना कर्नल स्टीवेन्सन की अध्यक्षता में वयनाड के किले पर भेजी गयी.
शत्रुओं ने घेरा डाल दिया है. हमें किला खाली करना पड़ेगा.


राजा और उसके सैनिकों ने चिरक्कल के जंगलों में शरण ली.
एडचेन्न, हम अंग्रेजों को फिर धूल चटायेंगे, जैसे पांच साल पहले चटायी थी.


दोनों पक्षों के बीच मुठभेड़ होती रही. कुछ महीने बाद शंकरन नंबियार अपने किशोर बेटे के साथ पकड़े गये और दोनों को फांसी दे दी गयी.













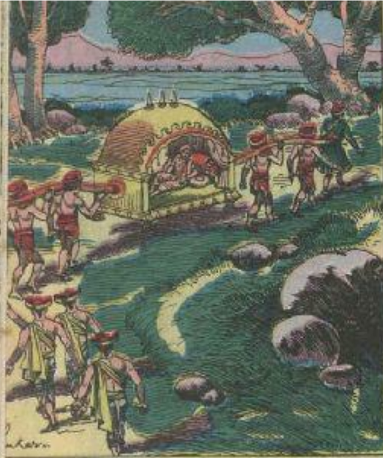


महाभारत

कृष्ण द्वारका चला गया । उपप्लाव्य में धर्मराज, विराट तथा अन्य राजा युद्ध की तैयारियों में लग गये । विराट और द्रुपद ने सब मित्र राजाओं को समाचार भिजवाया कि वे सबके सब मंत्री, बंधु व मित्रों को लेकर तुरंत निकल पड़ें । यह समाचार पाते ही सबके सब राजा उपप्लाव्य पहुँचने लगे । इनमें से कुछ ऐसे राजा थे, जो पांडवों को चाहते थे, उनकी मांगों को न्यायसंगत मानते थे । उन सब राजाओं को भली-भांति मालूम था कि कौरवों ने पांडवों को धोखा दिया । जुए में हराकर उनका सब कुछ छीन लिया । पांडव वचन-बद्ध होकर वनवास गये और एक वर्ष का अज्ञातवास भी अनेकों कष्ट सहते हुए पूरा किया । अब अपना राज्य वापस माँग रहे हैं तो कौरव उसे देने से इनकार कर रहे हैं, जो बहुत ही अन्यायपूर्ण है । अतः कौरवों के विरुद्ध लड़ने के लिए उन्होंने कोई आनाकानी नहीं की । कुछ ऐसे राजा थे, जिनके हृदय में विराट व द्रुपद के प्रति आदर की भावना थी ।

धृतराष्ट्र के पुत्रों को जब ज्ञात हुआ कि पांडव युद्ध की तैयारियाँ कर रहे हैं, सेना इकट्ठी कर रहे हैं तो उन्होंने भी अपने मित्रों को आह्वानित किया । यों कौरव-पांडवों के युद्ध के समाचारों ने भिन्न-भिन्न देशों में तहलका मचा दिया । बड़ी-बड़ी सेनाओं की चहल-महल से भूमि थर्रा उठी ।

पहले से ही निश्चित निर्णय के अनुसार द्रुपद ने अपने पुरोहित को कौरवों के पास भेजते हुए उससे कहा "तुम प्रज्ञावान हो । तुम्हें अच्छी तरह से मालूम है कि धृतराष्ट्र और धर्मराज कैसे-कैसे स्वभाव के है । धृतराष्ट्र जानते हैं कि कौरवों ने पांडवों को किस प्रकार धोखा दिया । विदुर मना भी कर रहा था, पर उसकी बात को अनुसनी करके अपने पुत्र की इच्छा की पूर्ति के लिए धृतराष्ट्र ने, धर्मराज



को जुआ खेलने के लिए बुलवाया। पांडवों को राज्य न लौटाने का उन्होंने निर्णय भी ले लिया। तुम धृतराष्ट्र को बताओ कि धर्म क्या है, न्याय क्या है? विदुर तुम्हारा समर्थन करेगा। तुम्हारे पक्ष में बोलेगा। तुम पांडवों की अच्छाई और कौरवों की बुराई पर ज़ोर देकर बोलो। हो सकता है, तब उनके पक्ष के लोग अधर्म के लिए युद्ध करने हिचकिचाएँ, किसी निश्चय पर आ न पायें। इस प्रकार उनमें भेदभाव लाओ। यही तुम्हारा प्रधान कर्तव्य है। दुर्योधन से तुम्हें डरने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम सिर्फ़ दूत ही नहीं हो, बल्कि उम्र में भी बड़े हो।''

द्रुपद का पुरोहित अपने शिष्यों को लेकर हस्तिनापुर निकला। बाद पांडवों ने और राजाओं के पास दूत भेजे, किन्तु अर्जुन स्वयं कृष्ण से मिलने गया। गुप्तचरों के द्वारा पांडवों के संबंध में पूरी जानकारी पाता रहता था दुर्योधन। उसे शंका भी कि शायद कृष्ण पांडवों को वचन देगा और उन्हीं के पक्ष में रहकर लड़ेगा। अतः उसने भी कृष्ण से मिलने और उसकी सहायता माँगने का निर्णय लिया। उसका समझना था कि कृष्ण भले ही पांडवों की सहायता क्यों न करे, इससे कौरवों को कोई नष्ट पहुँचनेवाला नहीं है। अच्छा इसी में है कि उससे एक बार मिल लूँ और सहायता माँग लूँ, तो कृष्ण भविष्य में यह नहीं कह सकता कि कौरवों ने मेरी सहायता नहीं माँगी, इसीलिए मैं पांडवों के पक्ष में लड़ रहा हूँ। उसका यह मिलन केवल औपचारिक था। वह भी अपने परिवार के कुछ सदस्यों को लेकर द्वारका पहुँचा। अर्जुन और दुर्योधन ने एक ही दिन द्वारका में प्रवेश किया।

दोनों जब कृष्ण के घर पहुँचे तब कृष्ण सो रहा था। कृष्ण के सिरहाने एक उच्च आसन था। दुर्योधन सीधे वहाँ जाकर उसमें बैठ गया। दुर्योधन के पीछे ही आया अर्जुन कृष्ण के पाँवों के पास खड़ा हो गया।

थोड़ी देर बाद कृष्ण नींद से जागा। पहले अपने पैरों के पास खड़े अर्जुन को देखा और फिर देखा दुर्योधन को, जो उसके सिरहाने बैठा था। उसने दोनों से कुशल-मंगल पूछा और आदर-सत्कार करने के बाद दोनों से पूछा कि किस काम पर आये ?

दुर्योधन ने मुस्कुराते हुए कहा ''कृष्ण, हमारे बीच जो युद्ध होनेवाला है, उसमें मेरे पक्ष में युद्ध करके मेरी सहायता करो। तुम्हारे लिए हम दोनों एकसमान हैं। हम दोनों तुम्हारे

एक ही प्रकार के बंधु हैं। अलावा इसके, मैं ही पहले तुम्हारे पास आया हूँ। मेरी सहायता करना ही तुम्हारा धर्म है।''

कृष्ण ने कहा ''हाँ, अवश्य ही तुम्हीं पहले आये। परंतु मैंने पहले देखा, अर्जुन को। इसलिए मैं तुम दोनों की सहायता करूँगा। अर्जुन उम्र में तुमसे छोटा है, इसलिए वह पहले पूछे कि उसे क्या चाहिये। मुझ जैसे योद्धा मेरे साथ दस लाख हैं। वे एक तरफ़ लड़ेंगे तो मैं दूसरी तरफ़। परंतु हाँ, मैं स्वयं युद्ध नहीं करूँगा। केवल सलाहें दूँगा। इनमें से तुम जो चाहो, माँगो।''

अर्जुन ने कृष्ण को चुना। दस लाख गोपाल योद्धाओं को दुर्योधन ने चुना। वह अपने आप इस बात पर खुश हो रहा था कि मुझे इतनी बड़ी सेना की सहायता मिलनेवाली है और अर्जुन को केवल कृष्ण की सहायता। वह भी सलाहों की सहायता। बाद वह बलराम से सहायता माँगने गया।

बलराम ने दुर्योधन से कहा ''पुत्र, मैं जब विवाह में भाग लेने विराटनगर गया था तब मैंने तुम दोनों पक्षों को समान मानकर बात की। किन्तु कृष्ण मेरे अभिप्राय से सहमत नहीं हुआ। मैंने उसी समय निर्णय ले लिया था कि मैं किसी भी पक्ष का समर्थन नहीं करूँगा। असल में तुम्हें किसी की सहायता की क्या आवश्यकता है? जाओ और युद्ध करो। क्षत्रिय होने के नाते अपना क्षात्रधर्म निभाओ।''

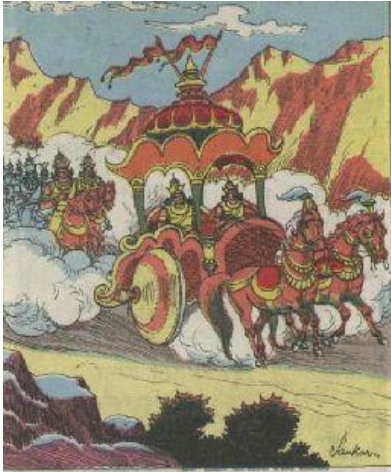
दुर्योधन के आनंद की सीमाएँ न रहीं। वह बलराम के गले लगा और उसे लगा भी कि उसकी विजय निश्चित है। फिर वह वहाँ से कृतवर्मा के पास गया। उसकी सहायता



माँगी। कृतवर्मा ने दुर्योधन को एक अक्षौहिणी सेना दी। यों दुर्योधन अपना काम पूरा करके हस्तिनापुर लौटा।

दुर्योधन के जाते ही कृष्ण ने अर्जुन से कहा ''मैंने तो कह दिया कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। मुझे चुनकर तुमने मेरी बड़ी सेना क्यों खो दी?''

अर्जुन ने कहा ''तुम अकेले ही उस सेना को जीत सकते हो। सब शत्रुओं को मैं अकेले जीत सकता हूँ। तुम युद्ध करोगे तो संपूर्ण कीर्ति तुम्हीं पाओगे, फिर मेरे लिए क्या बच जायेगा? मैं कीर्ति की आकांक्षा रखता हूँ, इसलिए तुम्हारी सेना को न चुनकर तुम अकेले को चुना। तुम्हें मेरी एक मदद करनी होगी। तुम्हें मेरे रथ का सारथी बनना होगा। दीर्घ काल से मेरी यह तीव्र इच्छा है। तुम सारथी



बनकर साथ दोगे तो इस कौरव सेना को क्या, सुर-असुर भी एक होकर आयें तो उन्हें भी हरा दूँगा। अतः मेरी इच्छा का तिरस्कार मत करो और मेरी बात मान जाओ।''

''अवश्य तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा'' कृष्ण ने वचन देकर अर्जुन को भेज दिया।

मुद्रदेश के राजा तथा नकुल, सहदेव के मामा शल्य को पांडवों का दूत द्वारा भेजा संदेश मिला। वह पांडवों की सहायता करने एक अक्षौहिणी सेना को तथा महारथी अपने पुत्रों को साथ लेकर निकल पडा। मुद्रदेश के परिधान, अलंकार, वाहन, रथ बहुत ही विचित्र होते थे। महापराक्रमी शल्य उस विचित्र सेना को लेकर बीच-बीच में पडावें डालकर विश्राम लेता हुआ पांडवों के पास पहुँचने निकला।

दुर्योधन को गुप्तचरों द्वारा मालूम हुआ कि शल्य पांडवों की सहायता करने निकल पडा तो उसने जान-बूझकर वहाँ-वहाँ उसने सारी सुविधाओं का प्रबंध किया, जहाँ-जहाँ शल्य ने विश्राम लेने पडाव डाले। स्वयं पडावें डलवाता था और उन्हें सजाता भी था। रुचिकर भोजन-पदार्थ बनवाता था, विनोद-कार्यक्रमों का आयोजन करता था। यों शल्य की यात्रा बड़ी ही सुखद रही। शल्य ने समझा कि ये सारे प्रबंध धर्मराज ही कर रहा है तो उसने एक बार कहा ''जो इन सारी सुविधाओं का प्रबंध कर रहे हैं, उन्हें एक बार मेरे पास ले आइये। जो वर माँगेंगे, उन्हें दूँगा।''

दुर्योधन तुरंत शल्य के सम्मुख आया। शल्य ने उसका आदर किया और पूछा ''पुत्र, पूछो, तुम्हें क्या चाहिये? अवश्य दूँगा।''

दुर्योधन ने कहा ''राजा, आप मेरी सेना का नेतृत्व संभालिये'' शल्य ने 'हाँ' कह दिया और कहा ''दुर्योधन, अब तुम अपना नगर लौट चलो। मुझे धर्मराज से मिलना है। उससे बातें करने के बाद तुम्हारे यहाँ आऊँगा।''

''धर्मराज को देखकर आप तुरंत लौट आइये। हमारी जीत आप पर ही निर्भर है'' यों कहकर दुर्योधन, शल्य के गले लगा और अपनी चाल की कामयाबी पर बेहद खुश होता हुआ हस्तिनापुर चला गया।

बाद शल्य उपप्लाव्य में पांडवों के शिबिर में गया। धर्मराज ने अतिथि-सत्कार किया। शल्य ने नकुल-सहदेव को गले लगाया। उन सबको अपने पास बिठाकर कहा ''धर्मराज, कुशल हो? भगवान की कृपा से वनवास सफलतापूर्वक पूरा किया। उससे भी अति कष्टदायक अज्ञातवास से भी निराटंक बाहर आ पाये। राज्य को खो देने के बाद भला कोई कैसे सुखी रह सकता है? कौरवों को युद्ध में हराओ और सुखी रहो। इतना सब कुछ हो जाने के बाद भी तुम और तुम्हारे भाइयों को सुखी देखा, यही बहुत है।''

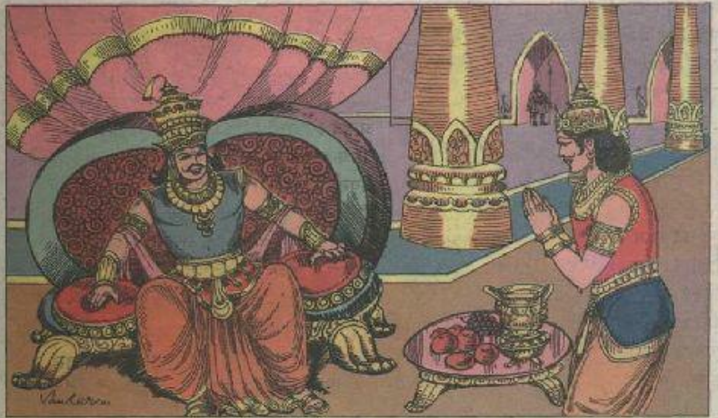
शल्य ने धर्मराज से यह भी बताया कि मार्ग-मध्य में दुर्योधन ने उसकी सुविधाओं का प्रबंध कैसे-कैसे किया और फलस्वरूप उसने उसे क्या वचन दिया।

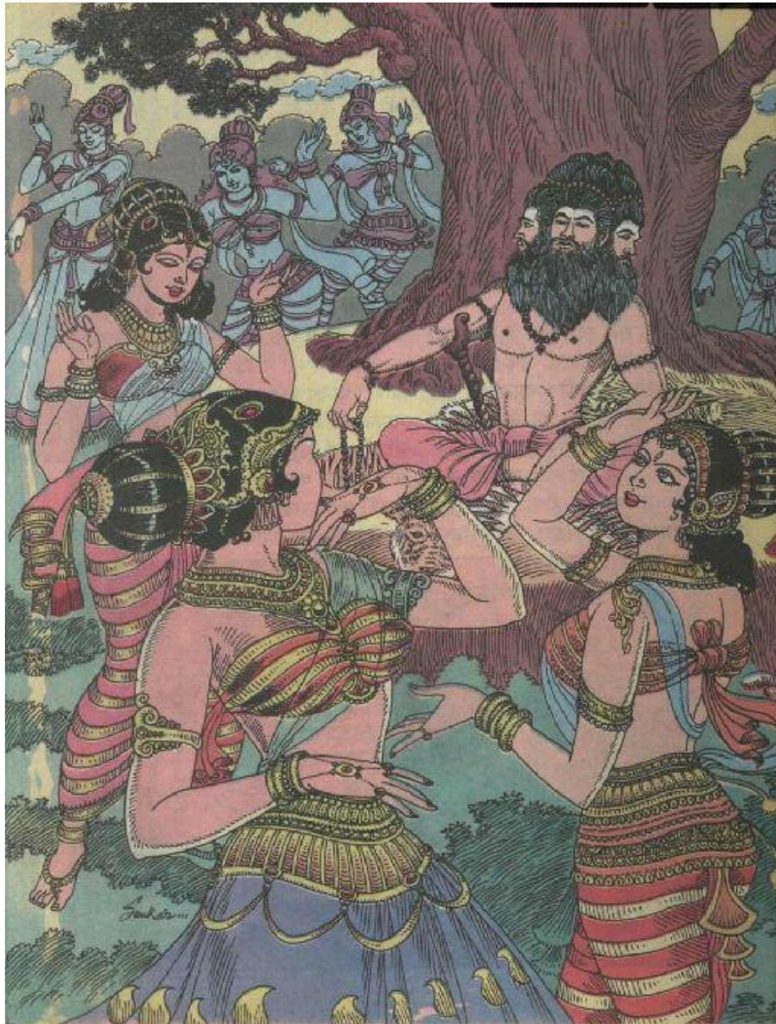
धर्मराज ने सब कुछ सुनने के बाद कहा ''महाराज, आपने जो किया, ठीक ही किया। जो संतुष्ट करते हैं, उनकी इच्छाओं की पूर्ति करना बड़ों का धर्म है। पर मेरा भी एक बड़ा उपकार कीजिये। आप युद्धक्षेत्र में कृष्ण के समान हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि कर्ण और अर्जुन में जब युद्ध होगा तब आपको कर्ण का सारथी बनना पड़ेगा, क्योंकि कृष्ण के समान का सारथी कौरव सेना में कोई है नहीं। कर्ण का जब सारथ्य करेंगे तब अर्जुन की रक्षा कीजिये। कर्ण के उत्साह का भंग कीजिये। यही मेरी प्रार्थना है।''

शल्य ने कहा ''तुम चिंतित मत होना। आवश्यकता पडने पर उस दुष्ट कर्ण की खबर मैं लूँगा। देखूँगा कि अर्जुन की विजय हो।''

पांडव जिन कष्टों से गुज़रे, धर्मराज ने सबका ब्योरा दिया। तब शल्य ने देवेंद्र जैसे देवताओं के राजा को किन-किन कष्टों का अनुभव करना पड़ा, सविस्तार यों बताया।

त्वष्ट प्रजापति ने इंद्र के साथ द्रोह करना चाहा। इंद्र को भी परास्त करनेवाले विश्वरूप नामक एक शक्ति की सृष्टि की। विश्वरूप के तीन सिर थे। वह तीन सिरवाला इंद्र सिंहासन पाने तपस्या करने लगा। इंद्र को लगा कि उसकी तपस्या सफल होगी। वह डर गया। उसने विश्वरूप की तपस्या को भंग करने के





लिए अप्सराएँ भेजीं। परंतु वे विश्वरूप की बुद्धि में कोई परिवर्तन नहीं ले आ पायीं। वे अपने अभियान में विफल हुईं।

अब इंद्र स्वयं गया और अपने वज्रायुध से विश्वरूप का वध किया। अब इंद्र का भय दूर हो गया। किन्तु बाद उससे भी बड़ी विपत्ति का सामना उसे करना पडा।

त्वष्ट को जब मालूम हुआ कि इंद्र के हाथों उसका पुत्र मारा गया तब वह अत्यंत क्रोधित हो उठा। वृतृ नामक एक और शक्ति की सृष्टि की, जो इंद्र को मारने की शक्ति रखती है। प्रलयकाल के सूर्य की तरह वृतृ पिता की आज्ञा पाकर स्वर्ग गया और इंद्र को युद्ध करने ललकारा। वृतृ के पास कोई हथियार नहीं था। उसने इंद्र के आयुधों की परवाह ही नहीं की। उसने इंद्र को पकड़ा और उसे निगल डाला। पर जब वृतृ जंभाई लेने लगा, तब इंद्र किसी प्रकार बाहर आ गया और बिना युद्ध किये ही भाग गया।

इंद्र देवताओं को साथ लेकर विष्णु के पास आया और उसपर आयी आपदाओं के बारे में बताकर, वृतृ को मारने का उपाय बताने की प्रार्थना की।

"वृतृ अब नहीं मरेगा। पहले उससे दोस्ती बढ़ाओ" विष्णु ने इंद्र को सलाह दी। तब महर्षि वृतृ के पास गये और उससे कहा "तुम इंद्र को हरा नहीं सकते। इंद्र भी तुम्हें हरा नहीं सकता। तुम दोनों संधि कर लो और सुखपूर्वक रहो।"

वृतृ ने महिर्षियों की बातें सुनीं और उससे सुलह कर ली। इंद्र से उसने स्नेहपूर्ण संबंध स्थापित किये। दोनों एक दूसरे का आदर करने लगे। परंतु इंद्र मौक़े की ताक़ में था। एक दिन शाम को वृतृ अकेले समुद्र-तट पर विहार कर रहा था, तब उसे अपने वज्रायुध से मार डाला।

विश्वरूप और वृतृ को मारकर इंद्र ने पाप किया, जिससे उसकी मति भ्रष्ट हो गयी। किसी को दिखायी दिये बिना इधर-उधर लक्ष्यहीन हो घूमने लगा। इंद्र की इस स्थिति को देखकर किसी एक समर्थ देवता की खोज होने लगी, जो इंद्र के सिंहासन पर आसीन होने की योग्यता रखता हो। महर्षि सहुष के पास गये और उससे प्रार्थना की कि वे इंद्र के आसन पर विराजमान हों और तीनों लोकों पर अपना शासन चलायें।



'चन्दामामा' की ख़बरें

लंबा खिलौना

बच्चे जैसे ही खिलौनों की बातें करते हैं, हमें याद आते हैं - टायगन्स, रिमोट कंट्रोल द्वारा चलायी जानेवाली मोटर कारें, रेल आदि। हाथी, रीछ, बिल्ली, खरगोश आदि खिलौने भी बच्चों को बहुत ही आकर्षित करते हैं। क्या तुम जानते हो कि बच्चों के खिलौनों में से कौन-सा खिलौना सबसे लंबा है ? १९९४ में नार्वे के विद्यार्थियों ने ४१९ मीटरों की लंबाई के एक खिलोने का निर्माण किया। अब सिंगापुर में उससे भी लंबा एक चीनी ड्रागन बनाया गया। विकलांगों की संक्षेम निधि के लिए, सिंगापूर एयर लायन्स के अनुरोध पर यह खिलौना बनाया गया। 'जिमक्लिप्स' में बना बड़ा ही लंबा 'चैन' भी सिंगापूर में ही है।

पुराना रेल्वे इंजन

९५ वर्षों के पहले भारत में जब इसका प्रवेश हुआ, तब इसे 'फैरी क्वीन' के नाम से पुकारते थे। रेल की पटरियों से यह हटाया गया और इसे दिल्ली के नेशनल रेल्वे म्यूजियम में सुरक्षित रखा गया। हमारे रेल्वे विभाग ने सोचा कि क्या इसके द्वारा विदेशी मुद्रा कमायी जा सकती है ? इंजन को दुरुस्त किया और उसे खूब सजाया। वह पटरियों पर लाया गया और दो डिब्बे उसके पीछे लगा दिये। एक डिब्बे में बैठकर साठ यात्री यात्रा कर सकते हैं। दूसरे डिब्बे में सामान रखे जा सकते हैं। अक्तूबर से दिल्ली से राजस्थान के आलवार तक इस रेल का आना-जाना शुरु हुआ। इसमें यात्रा करने के लिए ४०० अमेरिकन डालर्स याने लगभग पंद्रह हजार रुपये चुकाने होंगे। आलवार पहुँचते-पहुँचते छे घंटे लग जायेंगे। वहाँ से यात्री 'सरीस्का वैल्ड लैफ सांक्चुरी' ले जाये जाएँगे। यह पुराना इंजन जिस कंपनी में तैयार किया गया, वह कंपनी अब नहीं रही। दीर्घ काल तक इसे उपयोग में लाने की संभावना है।



ई.पू. चौथी शताब्दी का दुनिया का नक़्शा

तीस सालों के पहले तांबे के पत्ते पर अंकित दुनिया का एक नक़्शा चीन में पाया गया। पुरातत्व विभाग के शास्त्रज्ञों का मानना है कि यह ई.पू. ३४० वर्षों का है। हेवी परगणा, सिंगषान प्रदेशों का यह नक़्शा अति प्राचीन है। यह २३०० साल पुराना है। इसमें नाप-माप स्पष्ट हैं, किन्तु अंक्षांश व रेखांश रेखाएँ दिखायी नहीं दे रहीं हैं।

चाय की पत्ती की क़ीमत

निरुत्साह के समय जब हम गरम चाय पीते हैं, लगता है कि हम फिर से तरोताज़ा हो गये। अब साधारणतया एक किलो की चाय की पत्तियों की क़ीमत है-एक सौ से एक सौ पचास रुपये, डार्जलिंग में उत्पन्न विशिष्ट प्रकार की चाय की पत्तियों की नीलामी हुई, हाल ही में कलकत्ते में। हर किलो के लिए २,७०० रुपये चुकाये गये, जो रिकार्ड है।

'चन्दामामा' परिशिष्ट १११



हमारे देश की शोभाएँ

पुष्कर मेला



पुष्कर राजस्थान का एक छोटा-सा शहर है। अपने अनूठों मंदिरों के लिए यह सुप्रसिद्ध है। ऊँटों की हाट यहाँ हर साल लगती है। कार्तिक पूर्णिमा के पंद्रह दिनों के पहले से ही ऊँटों के झुंड यहाँ पहुँच जाने लगते हैं। ऊँटों को सजाया जाता है और उन्हें प्रदर्शिनी में दिखाया जाता है। बहुत बड़े पैमाने पर यहाँ ऊँटों का क्रय-विक्रय होता है। ऊँटों की दौड़ की प्रतियोगिता भी यहाँ चलायी जाती है।

सजाये गये चप्पल, दीवारों पर लटकाये जानेवाले सामान, रंग-बिरंगे आभूषण यहाँ आनेवाले पर्यटकों को विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। बड़ी ही बारीकियों से बने काठ्के शिल्पों, सुंदर कालीनों, मिट्टी के बरतनों व चटाइयों के लिए भी यह हाट प्रसिद्ध है। ऊँटों के चर्म से बनाये गये लाल, सुवर्ण व हरे रंगों की शीशियाँ, लांप षेड्स बड़े ही आकर्षणीय होते हैं। यंत्रों की सहायता लिये बिना ये वस्तुएँ हाथों से तैयार की जाती है। ये सब इस बात के गवाह हैं कि यह निराली हाट है। विनोद में आसक्ति रखनेवालों के लिएँ यहाँ आवश्यक प्रबंध किये गये हैं। यहाँ कठपुतलियों का खेल, नाटक, गीत, नृत्य -प्रदर्शन आदि का भी इंतजाम है।

पुराणकाल के राजा

मरुत्त

मरुत्त नामक राजा बड़े ही शिवभक्त थे। परमशिव की कृपा से उन्हें हिमालयों में सोने के निक्षेप प्राप्त हुए। उन्होंने यज्ञ करने का संकल्प किया। वेदमंत्रों से जब यज्ञ संपन्न हो रहा था, तब लंकाधिपति रावणासुर वहाँ आया। जो भी राजा सामने आता, युद्ध के वह उसे ललकारता था। जो झुक जाते, उन्हें वह छोड़ देता था और जो लड़ाई करने सन्नद्ध हो जाते थे, उनसे लड़कर उन्हें हरा देता था। यों वह तीनों लोकों में अपना आधिपत्त्य जमा रहा था। तद्वारा यह साबित कर रहा था कि तीनों लोकों में उसकी बराबरी का काई है नहीं। रावण मरुत्त की यज्ञशाला में आया और उसे ललकारा "झुक जाओ, नहीं तो मुझसे युद्ध करो।"

उस ललकार को सुनकर वहाँ उपस्थित देवता घबरा गये। उन सबने पक्षियों और जंतुओं का रूप धारण किया और जाकर दूर खड़े हो गये। वे वहीं खड़े होकर बड़ी आतुरता से देखने लगे। वे देखना चाहते थे कि वहाँ अब क्या होगा।

मरुत्त ने पूछा "तुम कौन हो?"

उसके इस प्रश्न पर आश्चर्य प्रकट करते हुए रावणासुर ने कहा "यह भी नहीं जानते कि मैं कौन हूँ? कुबेर का भ्राता हूँ। अग्रज को परास्त करके उसके पुष्पक को हस्तगत करनेवाला पराक्रमी हूँ।"

"अग्रज को पराजित करके अपने को पराक्रमी घोषित कर रहे हो! इतना अहंकार। यह तो लज्जा की बात है। मैं तुम्हें अभी यहीं यमराज के पास भेजूँगा," कहते हुए मरुत्त ने धनुष अपने हाथ में लिया।

उसके धैर्य को देखते हुए रावण स्तंभित रह गया। उसने आज तक किसी ऐसे धैर्यशाली को नहीं देखा। किसी ने आज तक ऐसा साहस नहीं किया। दोनों जब युद्ध करने के लिए सन्नद्ध होने लगे तब संवर्तक मुनि ने राजा मरुत्त को रोकते हुए कहा " यज्ञ करते समय याज्ञिक को क्रोध अथवा आवेश का दास होना नहीं चाहिये। आवेश के वशीभूत होकर तुमने व्रत का भंग किया। अतः तुम पराजित समझे जाओगे।"

मरुत्त ने धनुष नीचे गिरा दिया।

वहीं उपस्थित असुरों के गुरु शुक्र ने रावण से कहा "मरुत्त ने धनुष नीचे गिरा दिया। इसका यह अर्थ हुआ कि तुम्हीं विजयी हो।"

रावण संतुष्ट हुआ और वहाँ से चला गया।

मरुत्त का यज्ञ विजयपूर्वक पूर्ण हुआ। अपने जीवन-काल में उपयोग में लाने के बाद जो सोना बच गया, उसने उसे हिमालय पर्वतों में छिपाया। उत्तरोत्तर वह सोना धर्मराज के यज्ञ में उपयोग में लाया गया।



क्या तुम जानते हो?

समाचार-पत्र



ई.पू. पाँचवीं शताब्दी में जो प्रजा राजधानी रोम नगर से दूर रहती थी, उन्हें राजधानी से संबंधित समाचारों की जानकारी पत्रों द्वारा दी जाती थी। ई.पू. के साठवें वर्ष में जूलियस सीजर ने इस पद्धति को क्रमबद्ध किया। उसकी सरकार की 'फोरम' हर दिन इसे प्रकाशित करती थी। वे इसे 'आक्ता ड्रैयरना' (नित्य घटी घटनायें) कहते थे। वर्तमान हमारे समाचार-पत्रों के समान की ही प्रप्रथम पत्रिका १६६३ में लंदन में 'इंटलजेन्स' के नाम से प्रकाशित हुई। अमेरिका के बोस्टन नगर में 'पब्लिक अक्करेन्सेस' १६९० में प्रकाशित होने लगी। अमेरीका में जब से 'सिविल वार' छिड़ा, तब से प्रजा में इन समाचार-पत्रों के प्रति आसक्ति बढ़ने लगी। तब तक अमेरिका से लगभग ७६ पत्रिकाएं प्रकाशित हो चुकीं।

इंद्रधनुष

हिलते पुष्प



समुद्र तटों पर जिन जलाशयों में गहराई नहीं होती, वहाँ चट्टानों से सटे हुए 'अनिमोन्स' दिखायी देते हैं। जब लहरें नहीं उठतीं, तब ये लसलसाहट ने भरे रंगीन पिंड की तरह दिखाई देते हैं। ये जब डूबे हुए होते हैं तब झिलते पुष्पों की तरह दिखाई देते हैं। इन्हें 'सी अनिमोन्स' कहते हैं। यद्यपि ये वायु पुष्प कहे जाते हैं, पर ये न ही पुष्प हैं, न ही पौधे। ये असल में जंतु हैं। ये छोटे-छोटे कीड़ों को खाकर जीनेवाले मांसाहारी जंतु हैं। इनके शरीर में रीढ़ नहीं होती। इस कारण ये बैठ नहीं पाते, गोल-गोल पंखुड़ियों के आकार की मूँछें होती हैं। इसी वजह से ये पुष्प लगते हैं। सीमोन्स के परिवार के 'तोरल्स' नामक ये जंतु काल्शियम (चूना) जैसे पदार्थों से अस्थिपंजरों का निर्माण करते हैं। इन्हीं को प्रवाल कहते हैं।

स्वतंत्रता की स्वर्णजयंती के अवसर पर 'चन्दामामा' की भेंट

प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम - ९



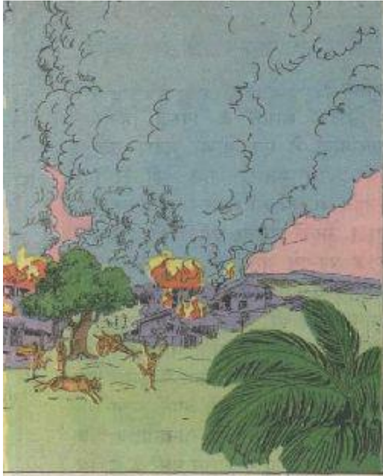
(भारत के विभिन्न प्रांतों में क्रमशः पराये शासकों के विरुद्ध शत्रुता की भावना प्रबल होती गयी। कानपूर के विद्रोह के उपरांत नानासाहेब मराठा राजा घोषित हुए। इस घटना ने झान्सी लक्ष्मीबाई को प्रोत्साहित किया। उन्होंने अपने राज्य को स्वतंत्र घोषित किया, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन था। लक्ष्मीबाई ने चेतावनी भी दी कि अंग्रेज सेना तुरंत झान्सी के क़िले से निकल जाए। परंतु ब्रिटिश अधिकारियों ने उसकी चेतावनी की परवाह नहीं की। झान्सी की प्रजा ने क़िले पर धावा बोल दिया और सैनिकों को मार डाला। (-बाद)

संध्या का समय था। मुस्लिम मज़हब का एक फ़क़ीर अपने छे अनुयायियों के साथ पूरब की ओर तेज़ी से आगे बढ़ने लगा। हिन्दू धर्म का एक साधु अपने शिष्यों को लिये हाथी पर आसीन होकर सामने से आ रहा था। दोनों का आमना-सामना हुआ। साधु को देखते ही फ़क़ीर ने अपना हाथ उठाकर कहा "दीन, दीन।" साधु ने उसी प्रकार हाथ उठाकर कहा "भूम, भूम।" फ़क़ीर ने मुस्कुराते हुए फिर से हाथ हिलाया। साधु हाथी से उतरा। दोनों गले मिले। दोनों ने अपने अनुयायियों को वहीं ठहरने के लिए कहा और पास ही की एक पहाड़ी पर जाकर दीर्घ चर्चाओं में निमग्न हो गये।

क्या दोनों ने अपने धर्मों के संबंध में आपस में चर्चाएँ कीं? नहीं। पराये शासकों के विरुद्ध जंग लड़ने के लिए प्रजा को दोनों ने जगाया, उन्हें प्रेरणा दी। दोनों का एक ही लक्ष्य था। उन दोनों ने आपस में इसी विषय को लेकर चर्चाएँ कीं। साथ ही इस दिशा में अपने-अपने अनुभवों, हार-जीत आदि पर बहुत देर तक बातें करते रहे। साथ ही वे एक दूसरे से बताते रहे कि किन-किन राजाओं से वे मिले, किन-किन संस्थानों के अधिपतियों से उन्होंने चर्चाएँ कीं, किन-किन प्रमुख व्यक्तियों को संदेश भेजे, किन-किनको उन्होंने सहायता पहुँचायी और किन-किन को वचन दिये और किन-किन से वचन लिये। अपने-अपने अगले कार्यक्रमों पर भी दोनों ने प्रकाश डाला। उनकी बातचीत का सार यही था कि उन्होंने देश से अंग्रेज़ों को निकालने के लिए अब तक क्या-क्या प्रयत्न किये और भविष्य में उन्हें क्या-क्या करना चाहिये।

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध हिन्दु - मुसलमानों ने एक होकर लड़ाई लड़ी। अपने बीच मतभेद आने नहीं दिया। मज़हब या धर्म को लेकर उनमें झगड़े नहीं हुए। उनकी एकता दुर्भेद्य थी। यद्यपि उनके पहनावे अलग थे, नाम अलग थे, भगवान की प्रार्थना की उनकी पद्धतियाँ अलग-अलग थीं, परंतु दोनों ने इस सत्य को नहीं भुलाया कि दोनों भारतमाता की संतान हैं। यह भावना दोनों में समान रूप से घर कर गयी। उन्होंने अपने अनुचरों से भी बारंबार बताया कि नानासाहेब और अजिमुल्लाखान अलग-अलग धर्मों के हैं, पर सगे भाईयों की तरह एक होकर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहे हैं। और हमें भी इसी एकता के सूत्र में बंधकर देश को अंग्रेज़ों





से मुक्त करना है।

अजिमुल्लाखान सूक्ष्मग्राही व पक्के राजनीतिज्ञ थे। अंग्रेजी व फ्रेंच भाषाएँ वे अच्छी तरह जानते थे। वे नानासाहेब के प्रतिनिधि बनकर इंग्लैंड गये। वहाँ उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों को यहाँ की परिस्थितियों, भारतीय जनता के संप्रदायों, विश्वासों व अभिप्रायों पर यथाशक्ति प्रकाश डाला। परंतु वे अपना लक्ष्य साधने में सफल नहीं हो पाये। अपने कड़वे अनुभवों के आधार पर वे इस दृढ़ निश्चय पर आये कि कंपनी को भारत से भगाना ही एकमात्र उपाय है।

मातृभूमि पहुँचने के बाद अजिमुल्लाखान, नानासाहेब से मिले। दोनों ने जगह-जगह पर रहस्यपूर्वक क्रांति-संघों की स्थापना की, देश के अन्य नेताओं को दूतों द्वारा संदेश भेजे। यों दोनों ने सक्रिय रूप से स्वतंत्रता के इस आंदोलन में भाग लिया।

कानपूर की विमुक्ति और नानासाहेब के राज्याभिषेक ने कंपनी की प्रतिष्ठा को तीव्र रूप से आघात पहुँचाया। नाना साहेब को गद्दी से उतारना अब कंपनी का एकमात्र ध्येय बन गया। ब्रिटिश सरकार ने इस काम के लिए हेपलाक नामक जनरल को सेनाध्यक्ष बनाकर भारत भेजा। हेपलाक को यह ख़बर मिल गयी कि कानपुर के समीप के नदी तट पर ब्रिटिश अधिकारी व सैनिक बड़ी ही निर्दयता से मार डाले गये। कानपूर की जनता को सबक़ सिखाना ही अब उसका एकमात्र ध्येय था। हज़ार ब्रिटिश सैनिकों, व हजारों भारतीय सिपाहियों को लेकर उसने कानपूर पर हमला कर दिया। मार्ग-मध्य में ही उसके पैशाचिक कार्यों का प्रारंभ हो गया। उसने ग्रामों को सिर्फ लूटा ही नहीं, बल्कि उन्हें जला भी डाला। जो भी भारतीय सामने आता था, हिचकिचाये बिना उसे मार डालता था।

फतेगढ शहर के पास जब पहुँचा तब उसने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि शहर में घुस जाओ और लूट लो। लूटने के बाद उसने वहाँ की जनता को ज़बरदस्ती घरों में बंद कर दिया, बाहर से ताले लगा दिये और घरों में आग लगा दी।

नानासाहेब को समाचार मिल गया कि हेपलाक के सैनिक कानपूर की तरफ़ बढ़े आ रहे हैं। उन्हें इसकी भी जानकारी मिली कि मार्ग-मध्य में कितनी बर्बरता के

साथ वह पेश आया। तब नानासाहेब के चंद श्रेयोभिलाषियों ने उन्हें सलाह दी कि वे तुरंत कानपूर छोड़कर चले जाएँ और मौक़ा देखकर ब्रिटिश सैनिकों पर धावा बोल दें। किन्तु नानासाहेब ने शत्रुओं का डटकर मुक़ाबला करने का निर्णय किया। उन्होंने उनसे कहा "हो सकता है, हमारी हार हो। पर इस युद्ध में शत्रु के कुछ सैनिकों को मार तो सकते हैं। वह भी हमारे लिए उपयोगी ही सिद्ध होगा।"

इस बीच हेपलाक की सेना कानपूर के निकट पुहँची। नानासाहेब ने स्वयं नेतृत्व संभाला। नानासाहेब की सेना जैसे ही आगे बढ़ने लगी, हेपलाक की सेना पीछे हटती गयी। यह हेपलाक का केवल युद्ध-व्यूह था। सेना दो टुकड़ों में बंटी और नगर की दायीं तरफ़ व बायीं तरफ़ से एकसाथ कानपूर पर हमला कर दिया। नानासाहेब इस आकस्मिक घटना की कल्पना नहीं कर सके। इस आकस्मिक परिणाम को देखते हुए सैनिकों में खलबली मच गयी। फिर भी नानासाहेब ने अपना धैर्य नहीं खोया। उन्होंने सैनिकों को फिर से इकट्ठा किया और ब्रिटिश सेना पर टूट पड़े। ब्रिटिश सैनिक युद्ध-विद्या में प्रशिक्षित थे। अलावा इसके, उनके पास श्रेष्ठ बारूद की सामग्री थी। इस कारण से नानासाहेब की सेना शत्रु सेना के सामने टिक न सकीं। उन्होंने नानासाहेब की सेना का सर्वनाश कर दिया।

बंदूकों की आवाजों, सैनिकों की चिल्लाहटों व रोने-धोने से वातावरण गूँज उठा। अंधेरा चारों दिशाओं में फैल रहा



था। हेपलाक ने अपने आदमियों को आज्ञा दी कि नानासाहेब ढूँढे जाएँ और पकड़े जाएँ। उन्होंने उन्हें शवों व घायल सैनिकों के बीच ढूँढा। पर वे कहीं दिखायी नहीं पड़े। घरों में भी ढूँढा, किन्तु वे कहीं नहीं मिले। फिर थोड़ी देर बाद हेपलाक को मालूम हूआ कि अपने कुछ अनुयायियों के साथ नानासाहेब भाग गये और जाते-जाते सोना व धन भी लेते गये।

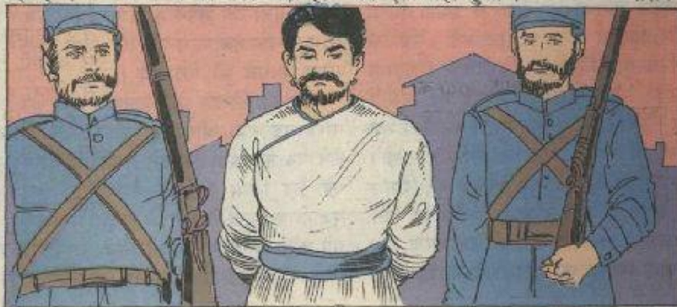
हेपलाक निराश हुआ। उसके क्रोध का पारा चढ़ गया और वह दारुण प्रतीकार लेने पर तुल गया। उसने हज़ारों ब्राह्मणों को क़ैद किया। उनमें से पंडित, गुरु, पुजारी व प्रमुख थे। उनके हाथ मरोड़ दिये गये और ज़बरदस्ती सबके सब कंपनी के क़िले में लाये गये। कंपनी के क़िले के

प्रांगण की भूमि पर रक्त के धब्बे थे। वह ब्रिटिशवालों का रक्त था। क़ैदियों को आदेश दिया गया कि वे ज़मीन पर लेट जाएँ और अपनी जीभ से उसे साफ़ करें। उन्हें उसके आदेश का पालन करना ही पड़ा। इस प्रकार उन्हें अपमानित करने के बाद हेपलाक ने उन्हें रिहा नहीं किया, उन सबको मरवा डाला।

वीलर की मृत्यु का बदला लेने के उद्देश्य से ही जनरल हेपलाक ने मासूम प्रजा को बहुत सताया, उनपर घोर अत्याचार किये। स्थानीय प्रजा को शूली पर चढ़ाया। फिर भी कुछ क्रांतिवीरों ने उस स्थिति में भी असमान धैर्य दिखाया। अपने सिद्धांतों व अपनी मातृभूमि के प्रति उनकी भक्ति-श्रद्धाओं का यह ज्वलंत उदाहरण है।

एक सज्जन नानासाहेब के शासन-काल में न्यायाधीश थे। उन्हें क़ैद किया और मौत की सज़ा सुनायी गयी। उस न्यायाधीश ने इस सज़ा की परवाह ही नहीं की। उन्होंने ऐसा व्यवहार किया, मानों यह सज़ा वे स्वयं भुगत नहीं रहे हों बल्कि कोई और भुगत रहा हो। वे वध्य-स्थल की तरफ़ बड़ी ही निड़रता से पग भरते हुए आगे बढ़े। उन आदमियों को देखकर भी थोड़ा भी वे नहीं घबराये जो उन्हें मृत्युलोक पहुँचाने तैयार खड़े हैं। उन्हें देखते हुए लगता था, समाधि-स्थिति में पहुँचे योगी हों। उस सज्जन को लगा, मानों वे पाखंडियों के चंगुल से विमुक्त हो रहे हों और एक ऐसी स्थिति की तरफ़ बढ़ रहे हों, जो उन्हें स्वार्गिक सुख प्रदान करेगी। कानपुर को पुनः अपने अधीन करने पर कंपनी के शिबिरों में आनंद उमड़ पड़ा। किन्तु इतने ही में उन्हें समाचार मिले कि रुकावटों व विपत्तियों के बादल घिरे आ रहे हैं। दिल्ली नगर अशांत हैं। लखनऊ में खलबली मची हुई है। बिहार में यहाँ-वहाँ विद्रोह हो रहे हैं।

भारत देश तथा इंग्लैंड में भी अंग्रेज़ों में यह संदेह उत्पन्न होने लगा कि और कब तक कंपनी अपना शासन जारी रख सकेगी? उनके संदेह का आधार भी था। परायों के शासन को हटाने में भारत के राजा अगर एकता बरतते तो सिपाहियों का विद्रोह भारत को स्वतंत्र बनाने में सफल होता, पर ऐसा नहीं हुआ। - सशेष





खीर से हुई बदनामी

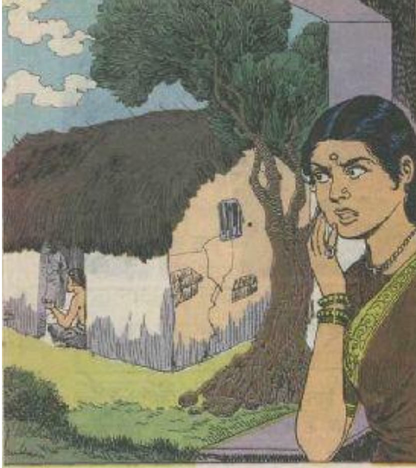
चमन उस गाँव का रईस था। उसने खुद बहुत कमाया और उसके पिता भी बड़ी संपत्ति छोड़कर गया। परंतु वह एकदम कंजूस था। किन्तु यह राज़ गाँववालों को मालूम नहीं था। सब यही कहते रहते थे कि वह बहुत बड़ा आदमी है और किसी दूसरे को साथ बिठाये बिना खाता ही नहीं। चमन गाँववालों से बहुत ही कम मिलता था। पर जब कभी भी मिलता, उनसे अपनी उदारता के बारे में लंबी-लंबी बातें करता रहता था। वह उनसे कहता रहता कि अतिथि का स्वागत-सत्कार करने में उसे बड़ा आनंद आता है। लोगों ने उसकी बातों का विश्वास किया और समझते रहे कि चमन बहुत ही उत्तम मनुष्य है। वह गाँववालों से बहुत ही कम मिलता इसलिए था कि उसे डर था कि गाँववाले कहीं उससे कोई सहायता मांग बैठें और वह न दे तो उसका भांडा फूट जायेगा।

हर दिन दुपहर को खाने के पहले वह अपने घर के बाहर के दरवाज़े के पास खड़ा हो जाता था और कहता रहता था "मेरे साथ भोजन करने क्या कोई अतिथि नहीं है?" पर गली में कोई साधु-सन्यासी दिखाई पड़ता तो चमन चुपके से अंदर चला जाता और दरवाज़ा बंद कर लेता था। गाँववालों को भ्रम में डालने के लिए उसका यह नाटक मात्र था।

रामू नामक एक गरीब काम ढूंढ़ते हुए पत्नी समेत उस गाँव में आया। उसे मालूम हुआ कि चमन बहुत ही उदार आदमी है और उसके यहाँ निश्चित रूप से नौकरी भी मिलेगी। रामू ने सोचा, ऐसे उदार सज्जन के यहाँ नौकरी मिलेगी तो ज़िन्दगी आराम से कट जायेगी। नौकरी ढूँढ़ते हुए किसी और गाँव में जाने की भी ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

रामू चमन से मिला। उसने कहा

पचीस वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित कहानी



"यजमान, मुझे और मेरी पत्नी को आप काम देंगे तो हम आपके बड़े आभारी होंगे। आपके दिये वेतन से अपना पेट भर लेंगे और जब तक ज़िन्दा रहेंगे, आपकी सेवा करते रहेंगे।" उस समय चमन के साथ चार-पाँच आदमी बैठे हुए थे। उसे डर था कि 'न' कह दूँ तो बेइज़्ज़ती होगी, इसलिए उसने रामू और उसकी पत्नी को नौकरी पर रख लिया। परंतु उसने यह नहीं बताया कि उनका क्या वेतन होगा।

चमन के घर के पीछे उजडी एक झोंपड़ी थी। उसी झोंपड़ी में रहने लगे, रामू और उसकी पत्नी। रामू घर का और बाहर का काम संभालता था। उसकी पत्नी झाड़ू देती और घर साफ़ करती थी। दोनों से चमन खूब काम लेता था पर वेतन बहुत ही कम देता था। वह वेतन रामू और उत्सकी पत्नी को पेट भर खाने के लिए भी पर्याप्त नहीं होता था। इसलिए वे हर रोज़ थोड़ा-सा नमक मिलाकर मांड पी लेते थे।

चमन के घर में किसी भी दिन खाद्य पदार्थ बचता ही नहीं था। चमन की पत्नी उतना ही पकाती, जितना उन्हें चाहिये।

"यह बेगारी कहीं किसी और जगह पर करेंगे तो पेट भरने मात्र के लिए कोई न कोई काम मिल ही जायेगा। यहाँ से हम चले जाएँगे" रामू की पत्नी कहा करती थी।

रामू भी चाहता था कि चमन की नौकरी छोड़ दूँ। परंतु वह चाहता था कि जाने के पहले चमन को सबक़ सिखाऊँ और फिर चला जाऊँ।

अब चमन पर वह अपनी नाराज़ी उतारता था, कुछ और ही तरह से। जब-जब वह खाने बैठता, कहता "अरी, खीर बना दी? जल्दी ले आओ तो सही। शक्कर थोड़ा ज़्यादा ही डालना। दो हरे केले भी लेती आना।" वह यों चिल्लाता रहता था। वह चाहता था कि ये बातें चमन के कानों में पडें। उसकी पत्नी मांड में थोड़ा और नमक डालती और दो-तीन मिर्चों के साथ बरतन उसके सामने रखती।

हर रोज़ रामू की ये बातें चमन की पत्नी सुनती रही। उसे खीर बहुत पसंद थी। परिवार बसाने ससुराल आने के बाद आज तक खीर खाने की बात तो दूर, उसका गंध भी उसने नहीं सूँघा। हरे केले खाना तो उसका सपना मात्र बनकर रह गया।

उससे रहा नहीं गया। उसने रामू की खीर

की बात अपने पति से बतायी। चमन को भी बहुत आश्चर्य हुआ। उसकी समझ में नहीं आया कि इतना कम वेतन पाते हुए भी वे दंपति खीर व केले कैसे खा पा रहे हैं। वह रामू से पूछकर विषय जानने आतुर हो गया।

दूसरे दिन रामू जब काम पर आया तब चमन ने उससे पूछा "तुम्हें किसी बात की कमी नहीं है न?"

रामू ने कहा "हमारी ज़िन्दगियाँ बिना किसी कमी के कटेंगी कैसे मालिक?"

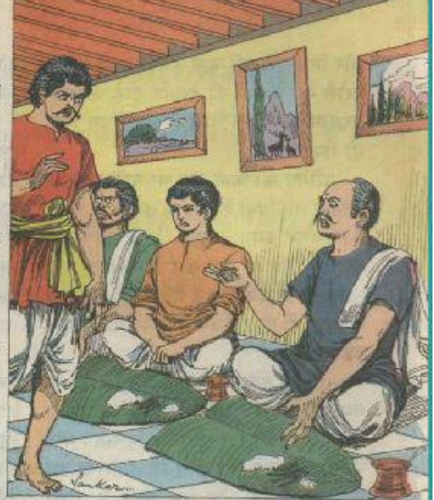
"यह क्या। रोज खीर व केले खाते जा रहे हो और यह दीन रोदन कैसा? क्या समझते हो कि यह बात मुझसे छिपी है?" चमन ने कहा।

"अच्छा उसकी बात कर रहे हैं आप? मालिक, वे ही हमें आसानी से मिलनेवाली चीज़ें हैं। हम जो खीर खाते है, मेरी पत्नी बहुत अच्छा बनाती है।" रामू ने कहा।

"तो इसका मतलब हुआ कि खीर बनाने में ज़्यादा खर्च नहीं होता" चमन ने पूछा।

चंद दिनों बाद चमन की बेटी को देखने के लिए पास ही के गाँव का रईस, उसका बेटा अपने दस-पंद्रह दोस्तों के साथ उसके घर आये। उन सबको एकसाथ देखकर चमन घबरा उठा। इन सबको स्वादिष्ट भोजन खिलाना ही होगा। उसे लगा कि अन्य खर्चों से शायद बच जाएँ, पर इस खर्च से बचना असंभव है।

चमन को अचानक एक उपाय सूझा। उसने रामू को बुलाकर कहा "अरे रामू, बाजार जाओ, खीर बनाने जो-जो पदार्थ चाहिये, खरीदकर ले आओ। हरे केले भी



खरीदकर ले आना। खीर अपनी पत्नी से ही बनवाना। याद रखना, जितना कम खर्च हो, उतना अच्छा है।"

अब रामू को चमन को सबक़ सिखाने का मौक़ा मिल गया। वह बाज़ार से थोड़ी-बहुत चीज़ें ले आया। पत्नी के कान में चुपके से कुछ बताया और अतिथियों के लिए भोजन बनाने उसे भेज दिया।

अतिथियों ने दुल्हन को देखा और फिर इधर-उधर की बातें करने के बाद भोजन करने बैठ गये।

चमन की पत्नी भोजन परोसने अतिथियों के सामने जाने से शरमायी। उसने वह काम भी रामू की पत्नी को ही सौंपा।

चमन ने रामू की पत्नी को आज्ञा दी "पहले सबको खीर परोसो" वह मांड, नमक

और मिर्च परोसती जाने लगी। अपने पत्ते में परोसे गये पदार्थों को देखकर दुल्हे के पिता परंधाम का चेहरा नाराज़ी से एकदम लाल हो गया।

परोसने का काम पूरा भी नहीं हुआ कि इतने में अतिथियों के क्रोध से तमतमाये चेहरों को देखकर चमन ने पूछा "क्यों समधीजी, क्या सोच रहे है? यह खीर है। आपके लिए ख़ास तौर से बनवायी है मैंने। ठंडा पड़ जाने के पहले ही खा लीजियेगा। नहीं तो रुचिकर नहीं होगा।"

परंधाम नाराज होते हुए उठ खड़ा हो गया और कहा "कैसे आदमी हो। हमारा अपमान करने की तुम्हारी यह हिम्मत। मांड परोसा और इसे खीर बता रहे हो? क्या हम नहीं जानते कि खीर क्या होती है, कैसी होती है? अच्छा हुआ, विवाह के पहले ही हमें मालूम हो गया कि तुम कैसे आदमी हो? तुम्हारे पास संपत्ति भरी पड़ी हो, क्या लाभ। तुम अव्वल दर्जे के कंजूस हो। मीठी-मीठी बातें करके दूसरों को धोखा देते रहते हो। तुम जैसे आदमी से रिश्ता जोड़ना महापाप है।" कहते हुए उसने अपने सब आदमियों को उठ जाने के लिए कहा और तेजी से सबके साथ चला गया।

यह बात क्षण भर में गाँव भर में आग की तरह फैली। चमन रामू और उसकी पत्नी से बहुत ही नाराज हो उठा। उसने रामू को फटकारते हुए कहा "अरे नीच, अपनी पत्नी से खीर बनाने को कहा तो मांड बनवाया! उसे परोसकर तुमने मेहमानों के सामने मेरी बेइज़्ज़ती की। तुम्हारी यह हिम्मत!" कहकर वह चिल्लाने लगा।

वहाँ जमे सबों ने विषय जाना। रामू ने घबराये बिना धीरे-धीरे कहा "क्या आप जानते नहीं, दरिद्र के लिए मांड ही खीर है। आप जो वेतन देते हैं उससे क्या मांड नहीं तो खीर थोड़े ही खा सकते हैं। आपने कैसे सोचा कि इतने कम वेतन में हम खीर खा सकेंगे? आपने कहा कि हम रोज़मर्रा जो खीर खाते हैं, वही खीर बनवाना। जैसे आपने कहा, मैंने किया। इसमें हमारी क्या ग़लती है?"

चमन को लगा मानों उसका सर कट गया। वह कुछ और बोल न सका। किन्तु राम ने चमन को जो पाठ सिखाया, गाँववालों ने उसपर उसे बधाई दी।



आवश्यकता से अधिक अक़्लमंदी

परमेश रंगनाथ का इकलौता बेटा था। उसने उसे बड़े लाड़-प्यार से पाला-पोसा। परमेश समझता था कि मैं बहुत ही अक़्लमंद हूँ और मुझे पढ़ने-लिखने की कोई आवश्यकता नहीं। रंगनाथ उसे पढ़ने पर ज़ोर देता तो वह अपने वाक्-चातुर्य से उसे चुप कर देता था।

एक दिन जब वह बेकार इधर-उधर घूमकर घर लौटा तो रंगनाथ ने अपने बेटे को गाली दी और कहा "पढ़ोगे नहीं तो कैसे जीओगे? जिन्दगी कैसे संभालोगे?"

"मुझे बेकार गाली मत दो। जानते हो, पिताओं से ज़्यादा अक़्लमंद होते हैं बेटे" परमेश ने नाराज होकर कहा।

"कैसे?" रंगनाथ ने पूछा।

"अगर मैं साबित करूँ कि बेटे पिताओं से ज़्यादा अक़्लमंद होते हैं तो भविष्य में कभी भी मुझे पढ़ने के लिए सताओगे नहीं। मेरी यह शर्त मान जाओगे तो बताऊँगा" परमेश ने कहा।

"अच्छा, बताना" रंगनाथ ने कहा।

"मेघसंदेश काव्य की रचना किसने की?" परमेश ने पूछा।

"महाकवि कालिदास ने" रंगनाथ ने उत्तर दिया।

"रघुवंश?" परमेश ने पूछा।

"कालिदास ने ही" रंगनाथ ने कहा।

"कुमारसंभव" के रचयिता कौन थे?" परमेश ने पूछा।

"कालिदास ही उस काव्य के भी रचयिता थे" रंगनाथ ने कहा।

परमेश ने हँसते हुए कहा "देखा, उन सब काव्यों के रचयिता कालिदास ही थे। अब बताओ कि उनके पिता ये काव्य क्यों रच नहीं सके?" कहता हुआ वह वहाँ से चला गया।

रंगनाथ की समझ में नहीं आया कि अपने बेटे की आवश्यकता से अधिक अक़्लमंदी पर हँसना चाहिये या रोना चाहिये।

